॥ श्रीजिनायनमः ॥

चौबीस दंडक

पं० दौलतरामजी कृत

प्रकाशकः—

चन्दाबाई दिगम्बर जैन

ग्रन्थ रत्नमाला

मालीवाड़ा, देहली।

मूल्य)॥

गणेश प्रेस नई सड़क देहली

चौबीस दण्डक

दोहा—वंदौ वीर सुधीर को, महावीर गम्भीर।
वर्द्धमान सन्मति महा, देव-देव अति वीर।१।
गत्या गत्य प्रकाश जो, गत्या गत्य वितीत।
अद्भुत अति गति सुगति ज्यों, जैनेश्वर जगजीत।२।
जाकी भक्ति विना विफल, गये अनन्ते काल। अगागति गत्या गति धरी, कटो न जग जँजाल।३। चौबीसों दण्डक विषैं, धारि अनन्ती देह। नाहिं लखायो ज्ञानि-धन, सुध सरूप विदेह।४। जिनवानी परकाश तैं, लहि निज आतम ज्ञान। दहिये गत्या गति सवैं, गहिये पद निरवान।५। चौबीसों दण्डक तनी, गत्या गत्य सुनेह। सुनकरि विरकति भाव धरि, चहु गति पानी देह।६।

चौपाई—पहलो दण्डक नारक तनो, भवन पति दस दंडक भनो। जोतिष व्यंतर स्वर्ग निवास, थावर पंचमहो दुख रास।७। विकलत्रय अरु नर तिर्यंच, पंचेन्द्री धारक परपंच। ए चौबीसों दंडक कहें, अब सुनि इसमें भेद जुलहे।८। नारक की गत्या गत्य दोय, नर तिर्यंच पंचेन्द्री होय। जाय असैनी पहला लगै, मनविन हिंसा कर्म न पगै।९। सरी सर्प दूजे लों कही, तीजे लग पक्षी

सकनाईं । सर्प जाय चौथे लों सही, नाहर पंचम आगे नहीं । १० । नारी छट्टे लग हीं जाय, नर और मच्छ सात में आय । ये नरक की आगति कही, अब सुनि नारक की गति सही । ११ । नरक सातवेंका जो जीव, पशुगति ही पावे दुख जीव । अरु सब नारक मरि नर पसु, दोउ गति आवै परवसु । १२ । छटे को निकसो जु कदाचि, समकित सहित श्रावगव्रत पाँच । पँचम निकसो मुनिहू होय, चौथे को केवलि हू जोय । १३ । तीजे नरक को निकलो जीव, तीर्थंकर होवे जग पीव । ये नारक की गत्या गती, भाषी जिन वानी ये सती । तेरह दंडक देवनिकाय, तिनको भेद सुनो मन लाय । नर तिरयंच पंचेन्द्री विना, और न कोई सुरपद गना । १५ देव मरे गति पांच लहाय, भू जल तरवर नर तिरथाय । दूजे सुर्ग उपले देव, थावर हू न कहे जिन देव । १६ । सहस्रार से ऊपर सुरा, मरि करि होहै निश्चै नरा । भोग भूमिया नर अरु तिरा, दूजा देव लोक तैपरा ।१७ जाय नहा निश्चय ये कहो, देव न भोगभूमि नहिं लई । करम भूम या नर अरु ढोर, इन विन भोगभूमि की ओर । १८ । जाय न तातै आगति होय, गति इन कुदेवन की होय । करम भूमियां, तिरजग सुधी, श्रावग व्रति धर बोरम गती । १९ । सहस्रार उपर तिरजंच,

जाय नहिं तजहू परपंच । अव्रति सम्यग्दृष्टी नरा, बारह तै ऊपर नहिं धरा । २० । अन्य मती पंचाग्नि साधि, भुवन त्रक् ते जाय न बाधि । परिब्राज्य का दंडी जेह, पंचम परे नहिं उपजेह । २१ । परम हंस नामा परमती, सहश्रार उपर नहि गती । मोक्ष न पावे परमत माहि, जैन बिना नहि करम नसाहि । २२ । श्रावक अरिज्या अनुव्रत धारि, बहुरि श्रावका गण अविकार । सोलहै सुरग परै नहि जाय, ऐसे भेद कहे जिन राय । २३ । द्रव्य लिंग धारैं जो जती, नव ग्रीवक उपर नहिं गती । नवहिअनोत्तर पंच चौतरा, महा मुनि विनु और न धरा । २४ । कई वार देव जे भयो, छगिण केइक पद नाहिं गहो । इन्द्र भयो न सचीहू भयो, लोकपाल कबहू न भयो । २५ । लौकांतिक हुओ न कदापि, नहिं अनुत्तर पहु चो आय । ये पद धारि बहु भव नहिं धरै, अलप काल में मुक्ती बरै । २६ । है विमान सर्वाथसिद्ध, सब तै ऊँचो अतुल जुरिद्ध । ताके सिर पर है शिवलोक । परै अनंता नंत अलोक । २७ । गत्या गत्य देव गति भनी, अब सुनि भैया नर की गति तनी । चौवीसों दण्डक के माहि, मनुष्य जाय यामें सक नाहि । २८ । मोक्षहू पावै मनुज मुनीस, सकल धरा को ज्यों अवनीस । मुनि विन मोक्ष लहे नहिं और, मनुष्य

बिना नहिं मुनि को त्यौर। २९। सम्यक् दृष्टी जे मुनि राय, भौजल उतरै शिवपुर आय। तहां जाय अविनाशी होय, फिर पाछै आवे नहिं कोय। ३०। रहै सासतो आतम माहिं, आतम राम भयो सक नाहिं। गति पच्चीस कही नर तनी, आगत फुनि बाइस ही भनी। ३१। तेज काय अरु वायु जुकाय, इन बिन और सवै नर थाय। गत्य पचीस आगति बाईस, मनुष तनी भाषी जग ईश। ३२। ता ईश्वर सम आतम रूप, ध्यावै चिदानन्द चिद्रूप। तो उतरै भवसागर भया, और न शिवपुर मारग लया। ३३। यह सामान्य मनुष्य की कही, अब सुनि पदवी धर की सही। तीर्थंकर की दोय आगती, सुर नारक तैं आवै सती। ३४। फेर न गति धारै जगदीश, जाय बिराजे जग के सीस। चक्री अध चक्री अरु हली, सुरग लोक तैं आवै रली। ३४। इनकी आगति एक ही जान, गति की रीति कहु जु बखान। चक्री की गति तीन जु होय, सुरग नरक अरु शिवपुर जोय। ३६। तप धारै शिव सुरगा जाय, मरे राज में नरक लहाय। आखिर पहुंचे पद निर्वाण, पदवी धर ये बड़े प्रधान। ३७ बलभद्रन की दो ही गती, सुरग जाय के हो शिवपती। तप धारैं ये निश्चय भया, मुकतिपात्र ये श्रुत में कहा ३८ अरध चक्री के दोउ भेद, नारक होय लहै अति खेद।

राज माहि यह निश्चय मरे, तदभव मुकति पन्थ नहि धरै। ३६। आखिर पावै जिन वर लोक, पुरुष शला का शिव के थोक। ए पद पाये कबहुं न जीव एपद पाय होय जग पीव। ४०। औरहु पद के एक नहीं मही कुल कर नारद पदहुनलही। रुद्र भये न मदन नहिं भये जिनवर मात तात नहिं थये। ४१। ये पद पाय जीव नही रुलै। थोरे दिन में जिन सम तुलै। इनकी आगित श्रुत तें जान, गति के भेद कहूं जु बखान। ४२। कुलकर देवलोक ही लहै मदन मदन हरि उरध ही लहै। नारद रुद्र अधोपुर जाय कलह कलंक महादुख दाय४३ जन्मांतर पावैं निर्वाण बड़े पुरुष ये सूत्र प्रमाण। तीर्थंकर के पिता प्रसिद्ध सुरग जाय के होय हैं सिद्ध। ४४ माता सुरग लोक ही जाय आखिर शिवपुर वेग लहाय एसव रीत मनुष्य की कही अब सुन तिरजग गति की सही। ४५। पँचेंद्री पशु मरण कराय चौवीसों दंडक में जाय। चौवीसों दंडक तें नरे पशू होय तो नाहीं न करैं ४६। गति आगति कही चौवीस पंचेंद्री पशु की जो ईश। परमेश्वर को पन्थ गहे चौवीसों दण्डक नहिं लहै। ४७। विकल त्रय की दस ही गति दस आगति कही जगपती। पृथ्वी थावर विकल जुतीन नर तिरजंच पंचेंद्री लीन। ४८। इनही दसमें उपजे जाय

इनही में विकलत्रय आय पृथ्वी पानी तरवर काय । इनही दसमें जन्म कराय । ४६ । नारक बिन सब दंडक जोय पुथ्वी पानी तरवर होय । तेजवायु मर नँव में जाय मनुष्य होय नहिं सूत्र कहाय । ५० । थावर पंच विकलत्रय ढोर ए नवगति भाषै सदमोर । दसते आय तेजअर वाय होय सही गावै जिनराय । ५१ । ये चौबीसों दंडक कहे इनको त्याग परमपद लहे । इनमें रुलैं सुजग को जीव ईनतैं रहित सु त्रिभुवन पीव । ५२ । जीव इसमें और न भेद एकरम बे करम उछेद । कर्म बंध जोलों जग जीव नासे करम होय जगपीव । ५३ ।

दोहा—मिथ्या अबरति जोग अरु मद परमाद कषाय इन्द्री विषय ज़ुत्यागिंये भ्रमण दूर हो जाय । ५४ । जिन बिनु गति बहु तें धरी आयो नहिं सुरझार । जिन मारग उर धारिये होवे भव दधिपार । ५५ । जिन भज सब परपंच तज बड़ी बात है येह । तंच महाव्रत धार कैं भवजल को जल देह । ५६ । अंतःकरण ज़ुशुद्ध पद जिन धर्मी अभिराम । भाषा भविजन कारने भाषी दौलत-राम । ५७ ।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री महावीरजी की पूजा

तथा

विनती संग्रह ।

प्रकाशक—

जैनदास जैन अटेर वाले

हाल भिन्ड ने छपवाई ।

श्री वीर निर्वाण स० २४७५

विक्रम स० २००५

॥ श्रीजिनाय नमः ॥

श्री महावीरजी की पूजा ।

दोहा—लक्षणसिंह सुहावनो, तिनतिनको कर सात ।
पीत वर्ण महावीर प्रति, पूजां भव्य प्रभात ॥

ओं, ह्रीं श्रीं महावीर जिनेन्द्राय श्री अत्र अवतर अवतर सवौषट० ।
ओं ह्रीं श्रीं महावीर जिनेन्द्राय श्री अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीं महावीर जिनेन्द्राय श्री अत्र मम सान्हितो भव भव सन्निधम् ।

अष्टक

प्रानी, जन्म जरा मरणोमहा, सो दुख तीन प्रकार हो, जासु विनाशन कारणे । ले जलदे त्रय धार हो, वर्द्धमान जिन सेवहूं, द्रव्य भाव विधि सार हो, मन वच काय लगाय के फिर न मिले ऐसी वार हो, वर्द्धमान जिन सेवहूं ॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं ॥१॥

प्रानीमोह महा आताप को, करत सुभाव विसार

हो, जासु विनाशन कारणे, लेकरि चन्दन गार हो, वर्द्धमान जिन सेवहु द्रव्य भाव विधिसार हो ॥ फिर न मिले ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय श्री संसार ताप विनाशनाय चंदनं ॥२॥

प्रानी-गमन चतुर्गति को जु है, अति दीरघ दुख दाय हो, जासु विनाशन कारणे, उज्जिल अक्षित ल्याय हो, वर्द्धमान जिन सेवहुं, द्रव्य भाव विधिसार हो ॥ फिर न मिले० ॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं ॥३॥

प्रानी–दुख दायक जगमें नहीं, और विरह सम तुल्य हो। जासु विनाशन कारणे, ले अति सुन्दर फूल हो, वर्द्धमान जिन सेवहुं द्रव्य भाव विधिसार हो ॥ फिर न मिले० ॥ ४ ।

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय काम वाण विध्वंसनाय पुष्पं ॥ ४ ॥

प्रानी–भूख भयानक है वड़ी, करत क्लेस अपार हो। जासु विनाशन कारणे, लेनेवज भरि थाल हो, वर्द्धमान जिन सेवहुं ॥ द्रव्य भाव विधिसार हो ॥ फिर न मिले० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय क्षुधा रोग निवार्णाय नैवेद्यम० ॥ ५ ॥

प्रानी–गोपति केवलि ज्ञानको, अन्धकार अज्ञान हो । जासु विनाशन कारणे, ले दीपक सुख दाय हो, वर्द्धमान जिन सेवहुं ॥ द्रव्य भाव विधिसार हो ॥ फिर न मिले० ॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं० ॥ ६ ॥

प्रानी–अष्टकर्म उरझावहीं, यह जग मैं सर वांग हो, जासु विनाशन कारणे, खेवत धूप दशांग हो, वर्द्धमान जिन सेवहुं ॥ द्रव्य भाव विधिसार हो ॥ फिर न मिले० ॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं ॥ ७ ॥

प्रानी-अन्तराय अरि आठमौं, आवत निधि खोय देत हो, जासु विनाशन कारणे, लेफल होय सचेत हो, वर्द्धमान जिन सेवहुं ॥ द्रव्य भाव विधिसार हो ॥ फिर न मिले० । ८॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्ताय फलं० ॥ ८ ॥

प्रानी-जल चन्दन चावर भले, फल सरस नैवेद्य हो. दीप धूप फल अर्घ ले. उर धरि परम उम्मैद हो, वर्द्धमान जिन सेवहुं । द्रव्य भाव विधिसार हो,

मन वच काय लगाय के ॥ फिर न मिले ऐसी वार हो । वर्द्धमान जिन सेवहुं ॥६॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ फल प्राप्तये अर्घं ॥ ६ ॥

हम निरखि जिन प्रति बिम्ब पूंजें, विविधि करि गुण स्थापना। तिनके न कारन काज निज, कल्यान हेतसु आपना। जैसे किसान करै, जु खेती, नहिं नृपति कारणे, अपनो सुनिज परिवार पालन के जु कासारणे ॥ पूर्णार्घं ॥

दोहा - पूजत सनमति नाथ पद, पूजत जिन गुण माल ।
मति माफिक तिनकी कहूं, भाषा करि जयमाल॥

चौपाई

पुरुषोत्तर सुख कारण विमान, सुनि जान्यो तसु आगम प्रमान, कुंडिलपुर नाम सु नग्र एन, सिद्धार्थ नाम राजा सुजैन ॥ १ ॥ तिनके त्रसिला देवीसु वाम, तसुग्रेह आन महवीर नाम, आसाढ़ सुदि छटि गर्भ जान, उपजे तसु कूख विषैं सु आनि। २॥ जनमन तेरसि दिन सुदी सुचैत, हनि अष्ट कर्म करिहैं सुजैत। वर उत्तर फाल्गुण नखत जोग, वरसै सु वहत्तर थितनि योग ॥३। कुमरा वय वर्ष

सु तीस सोय, तिन राजत्रिद्धि भुगतान कोय। मारग बदि शुद समी सुजोय, तप कीनों अति निश्चित्त होय ।।४।। वरषे सुवियालीस विधि अनेक, दिक्षा युत भूप निदान एक द्रुम शालतरु लीनो शुद्ध ठौर, विधि योग पारणौ की सु और ।।५।। कुंडिलपुर तहाँ नृप कुमर सैन, तिनके घर क्षीर लियो सुधंन । छद् मस्त् वर्ष दस अवर दोष दुख-दायक कर्म कलंक धोय ।।६।। वैसाख सुदी दशमी प्रधान उत्पन्न भयौ केवलि सुज्ञान ।। अपरान्ह वेग वैरा सु टेक, समवादि शरण जोजन सु-एक ।।७।। गणधर ग्यारहं गौतम सु आदि । समझे नर तंह भूले अनादि ।। प्रतिगण सुचतुर्दश सहस और छत्तीस सहस अर्जियां सु और ।।८।। जंह एक लाख श्रावक प्रवीण, तिगुनी तहं श्रावगनी प्रवीण ।। गनती करि बारह सौ प्रमाण, मुनिराज धनी वर अवधि ज्ञान ।।९।। गति सिद्ध जती, तरिहैं सु तारि शतहीन न सहस साढ़े सु चारि वैक्रियक ऋद्धि धारे, सु मंत एक सौ घटि एक हजार संत ।।१०।।

सत पांच सुमनपर्यय ठिकान, सत सात सहित केवलि सुज्ञान । वादी सौ चारि सु वाद पक्ष, मातंग नाम तिनके सुयक्ष ।११। यक्षनीतसु अपराजित सुनाम, जिनवर तिनके सुहजार नाम । जिननाथ वंश त्रय जग पतीश, कातिक वदि दिन सु अमावशीस ।१२। वरणो जिन गुन सुनि करि जिनुक्त, पावापुर चढ़ि पहुंचे सुमुक्ति । जिन गुण अंतिम जु समुद्र टेक, मति भाजन अल्प भर्यो कितेक ।१३।

॥ घत्ता ॥

निश्चै विधि गुण चारि, दर्शन ज्ञान अनन्त सुख, वलवीर्य अपार, सिद्ध भये जुत आठ गुण ॥

ओं ह्रीं श्रीं महावीर जिनेन्द्राय जयमाल अर्घ स्वाहा ॥

विधि पूर्व जोजन विंव पूजें, द्रव्य अरि पुनि भावसौं । अति पुन्य की रति कौसु प्रापति होय दीरघ आपुसौं ॥ जाके सुफल करि पुत्र धन धन्या देह निरोगता । चक्रेश खग धरेणेन्द्र इन्द सु होय निज सुख भोगिता ॥ इत्याशीर्वाद ॥

॥ इति महावीर पूजा समाप्त ॥

अथ विनती संग्रह

ओं० जय जय जय जिनदेव ॥
जय श्री जिन स्वामी, हा प्रभु जयजिनवर नामी ॥
करुणा कर सतसागर, जय जगके नामी ॥
ओं० जय जय जय जिनदेव ॥१॥
चिर मिथ्यातु मिटाया, सत संयम ध्याया ॥हां प्रभु॥
पंच महाव्रत धारी, केवल पद पाया ॥
ओं० जय जय जय जिनदेव ॥२॥
लोका लोक निहारे, दर्पणवत सारे ॥ हां प्रभु॥
मोक्ष महलके राजा, परम शान्ति धारे ॥
ओं जय जय जय जिनदेव ॥३॥
जगतारण तुम दीनी, स्याद्वाद वाणी ॥हां प्रभु॥
अधम अनन्ते तारे, को तुम सो दानी ॥
ओं जय जय जय जिनदेव ॥४॥
इन्द्र नरेन्द्र करे हैं, तुम पद की सेवा ॥हां प्रभु॥
तिहुं जग विपद विदारक, तुम देवनदेवा ।
ओं जय जय जय जिनदेव ॥५॥

नित नित आरति गाऊँ, ध्यान धरूं तेरा ॥हां प्रभु॥ मैं हूं सेवक चरण शरण का, काटो भव फेरा ॥ ओं जय जय जय जिनदेव ॥६॥

बिनती।

छंद भुजंग प्रयात-प्रभू आपने सर्व फन्द तोड़े। गिनऊं कहूं मैं तीन्हों नाम थोड़े ॥ पड़ो अंबुधे वीच श्रीपाल राई। जपो नाम तेरो भये थे सहाई ॥१॥ धरो रायने शेठ को सूलिकायें जपी आपके नाम की सार जायें ॥ भये थे सहाई तबै देव आये। करी फूल वर्षा सुवृष्टि वढ़ाये ॥२॥ जबै लाखके धाम वह्नि प्रजारी। भयो पांडु कापै महा कष्ट भारी ॥ जबै नाम तेरे तनी टेर कीनी। करी थी विदुर ने वहीं राह दीनी ॥३॥ हरी द्रौपदी धातुके खंड माहीं। तुम्हीं ह्वां सहायी भला और नाहीं ॥ लियो नाम तेरा भलौ शील पालौ। बचाई तहां तैं सबै दुःख टालौ ॥४॥ जबै जानकी रामने जोनिकारो। धरै गर्भ को भार उद्यान डारी ॥ रटौ नाम तेरो सबै सुक्खदायो। करी दूर पीड़ा सुछिन ना लगाई ॥५॥

विसन सात सेवै करै तस्कराई । सु अंजन जु तारो घड़ी ना लगाई ॥ सहै अंजना चंदना दुःख जेते । गये भाग सारे जरा नाम लेते ॥६॥ घड़े बीचमें सासुने नाग डारौ । भलौ नाम तेरो जु सोमा सम्हारौ ॥ गई काढ़ने को भई फूलमाला । भई है विख्यातं सबै दुख टाला ॥७॥ इन्हें आदि दैकैं कहां लौं बखानौ । सुनो वृद्ध भारो तिहु लोक जानौ ॥ अजी नाथ ! मेरी जरा ओर हेरो । बड़ी नाव तेरी रती बौंझ मेरौ ॥८॥ गहो हाथ स्वामी ! करो वेग पारा । कहूं क्या अबै आपनी मैं पुकारा ॥ सबै ज्ञान के बीच भाषी तुम्हारे । करो देर नाहीं अहो संत प्यारे ॥६॥

—⊛—

ॐ

नमः समन्तभद्राय ।

स्याद्वादग्रंथमाला ।

१.

स्वामि समन्तभद्राचार्यविरचित

जिनशतक ।

भव्योत्तम नरसिंहभट्टकृत व्याख्या

तथा

चावलीनिवासी श्रीयुत पंडित लालारामजीकृत

भाषानुवादसहित

जिसको

पन्नालाल बाकलीवाल

मालिक—स्याद्वादरत्नाकरकार्यालयने

काशीके

लक्ष्मीनारायणप्रेसमें सीताराम दिनकर जटार प्रोप्रायटरके

प्रबंधसे छपाकर प्रसिद्ध किया ।

वीर संवत् २४३८ । ईस्वीसन् १९१२ ।

प्रथमावृत्ति] ❀ [न्योछावर ॥)

सूचना ।

पाठक महाशय ! यह ग्रंथ सर्वसाधारणको रुचिकर व विशेष उपयोगी नहीं होगा इसकारण स्याद्वादग्रंथमालामें प्रकाशित करना लाभदायक न समझकर भी इसे सबसे पहिले इसलिये प्रकाशित किया है कि-जब स्वामिसमन्तभद्राचार्य महाराजको महाभस्मक व्याधि होगई थी उस समय फिरते २ यहां आकर काशीके प्रसिद्ध शिवभक्त शिवकोटी महाराजके शिवालयमे पुजारी बनकर शिवनिर्माल्यके सेवनसे भस्मकव्याधि रोगकी निवृत्ति कियी थी । जब काशीनरेशको इनके शैव होनेमें संदेह हुवा तो इनको अपने सामने शिवमूर्तिको नमस्कार करनेकी आज्ञा दी तब आचार्य महाराज भी स्वयंभूस्तोत्र रचकर स्तुति करनेलगे । जब अष्टम-तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रभकी स्तुति करते समय शिवमूर्ति फटकर उसमेंसे रत्नमयी चंद्रप्रभ भगवानकी मूर्तिका आविर्भाव हुवा तब उन्होंने नमस्कार किया और शिवकोटि महाराजप्रभृति हजारो शिवभक्तोको जिनभक्त बनाकर शिष्य किया । उस स्वयंभूस्तोत्रके पश्चात् ही आचार्य महाराजने यह जिनशतक नामकी स्तुतिविद्या प्रत्येक श्लोक मुरजादिचक्रबद्ध रचकर चित्रकाव्यका पांडित्य दिखाया है । स्याद्वादग्रंथमालाका प्रादुर्भाव इस पवित्र जैनतीर्थसे होनेके कारण काशीके इतिहासप्रसिद्ध उक्त आचार्यकृत इस ग्रंथको पवित्र मंगलमय समझकर हमने इसे मंगलाचरण स्वरूप सबसे प्रथम प्रकाशित किया है । आशा है कि आप इस पूज्य काव्यको विनयसहित ग्रहणकरके हमारे इस प्रथम परिश्रमको सफल करेंगे।

इस ग्रंथकी एक ही प्रति जयपुर नगरसे प्राप्त हुई थी उसीपरसे ही इसका संपादनकार्य हुआ है, दूसरी प्रतिकी [illegible] नहीं मिली । इसके सिवाय यदि नये प्रेसके नये कर्मचारियोंकी तथा हमारी दृष्टि दोषसे अशुद्धियां रही हों तो विद्वज्जन संशोधनपूर्वक पढ़कर इस प्रमादको क्षमा करेंगे ।

काशी ।
१—५—१२

प्रकाशक ।

ॐ

श्री परमात्मने नमः।

स्याद्वादग्रन्थमाला।

श्रीमद्भगवत्समन्तभद्राचार्यविरचितम्

जिनशतकं सटीकम्।

टीकाकारस्य मंगलाचरणम्।

नमो वृषभनाथाय लोकालोकावलोकिने।
मोहपंकविशोषाय भासिने जिनभानवे॥ १॥

समन्तभद्रं सद्बोधं [1]स्तुवे वरगुणालयम्।
निर्मलं यद्यशष्कान्तं बभूव भुवनत्रयम्॥ २॥

यस्य च सद्गुणाधारा कृतिरेषा सुपद्मिनी।
जिनशतकनामेति योगिनामपि दुष्करा॥ ३॥

तस्याः प्रबोधकः कश्चिन्नास्तीति विदुषां मतिः।
यावत्तावद्भूवैको नरसिंहो विभाकरः॥ ४॥

दुर्गमं दुर्गमं काव्यं श्रूयते महतां वचः।
नरसिंहं पुनः प्राप्य सुगमं सुगमं भवेत्॥ ५॥

स्तुतिविद्यां समाश्रित्य कस्य न क्रमते मतिः।
तद्वृत्तिं येन [2]जाड्येतु कुरुते वसुनन्द्यपि॥ ६॥

---

१ महामोधं। २ "तद्वृत्तिं यो न बोध्येत कुरुते वसुनन्द्यपि" इति पुस्तकान्तर पाठः।

आश्रयाज्जायते लोके निःप्रभोऽपि महाद्युतिः ।
गिरिराजं श्रितःकाको धत्ते हि कनकच्छविः ॥ ७ ॥

वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थकराणां तीर्थकरनामकर्मोदयवायुसमूहोद्धार्त्ते तसौधर्मेन्द्रादिसुरवरसेनावारिधिमाक्तिकजनसमुपनीतेज्याविधानार्हाणां घाति कर्मक्षयानन्तरसमुद्भूतविषयीकृतानेकजीवादिद्रव्यत्रिकालगोचरानन्तपर्या-यकेवलज्ञानाना स्तुतिरियं जिनशतकनामेति । तस्याः समस्तगुणगणो-पेतायाः सर्वालंकारभूषितायाः घनकठिनघातकर्म्मेन्धनदहनसमर्थायाः तार्किकचूडामणिश्रीमत्समन्तभद्राचार्यविरचितायाः संक्षेपभूतंविवरण क्रियते ।

मुरजबन्धः ।

श्रीमज्जिनपदाभ्याशं प्रतिपद्यागसां जये ।
कामस्थानप्रदानेशं स्तुतिविद्यां प्रसाधये ॥ १ ॥

श्रीमज्जिनेति । पूर्वार्द्धमेकपंक्त्याकारेण व्यवस्थाप्य पश्चार्द्धमप्येक पंक्त्याकारेण तस्याधः कृत्वा मुरजबन्धो निरूपयितव्यः । प्रथमपंक्तेः प्रथमाक्षरं द्वितीयपंक्ते द्वितीयाक्षरेण सह, द्वितीयपंक्तेः प्रथमाक्षरं प्रथमपंक्ते द्वितीयाक्षरेण सह एवमुभयपंक्त्यक्षरेषु सर्वेषु संयोज्यम् । एवं सर्वेऽपि मुरजबन्धा द्रष्टव्याः ।

अस्य विवरणं क्रियते । श्रीर्विद्यते यस्य स श्रीमान् जिनस्य पदाभ्याशः पदसमीपं जिनपदाभ्याशः श्रीमांश्चासौ जिनपदाभ्याशश्च श्रीमज्जिनपदाभ्याशस्तं श्रीमज्जिनपदाभ्याशं । प्रतिपद्य प्राप्य प्रतिपद्येति

प्रतिपूर्वस्य पदेः क्त्वांतस्य प्रयोगः। आगसां पापानां जये जयहेतोर्निमित्ते इवियमै। काम इष्ट कमनीयं इच्छा वा स्थानं निवासः काम च तत्स्थानं च कामस्य वा स्थान कामस्थानं तस्य प्रदान कामस्थान-प्रदानं अथवा कामश्च स्थानं च कामस्थाने तयोः प्रदानं कामस्थानप्रदानं तस्य ईशः कामस्थानप्रदानेशः त कामस्थानप्रदानेश, प्रथमपादेन सह सम्बन्धः। स्तुतिरेव विद्या स्तुतिविद्या ता प्रसाधये अहमिति सम्बन्धः। अथवा कामस्थानप्रदानेशमिति स्तुतिविद्याया विशेषणम्, कामस्थान प्रदानस्य ईष्ट इति कामस्थान प्रदानेट् अतस्तां। किमुक्तं भवति-श्रीमजि-नपदाभ्याशं प्रतिपद्य स्तुतिविद्यां प्रसाधयेऽहं। किं विशिष्टां स्तुतिविद्यां कर्थभूतं वा जिनपदाभ्याश कामस्थानप्रदानेश। किमर्थं आगसां जये जयनिमित्तं। प्रसाधये इति च प्रपूर्वस्य साधसंसिद्धावित्यस्य धोः णिजलडतस्य प्रयोगः॥ १॥

समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले श्रीजिनेन्द्रदेवके चरण कमलोंके निकट जाकर अपने पापोंका नाश करनेकेलिये मैं यह श्रीजिनेन्द्रदेवका स्तोत्र प्रारंभ करता हूं॥ १॥

मुरजबन्ध।

स्नात स्वमलगंभीरं जिनामितगुणार्णवम्।
पूतश्रीमज्जगत्सारं जना यात क्षणाच्छिवं॥२॥

स्नात स्वमलेति। मुरजबन्धःपूर्ववद्द्रष्टव्यः। स्नात इति क्रियापदं ष्णा शौच इत्यस्य धोः लोडंतस्य रूपं। सुष्ठु न विद्यते मलं यस्य स स्वमलः गंभीरः अगाधः स्वमलश्चासौ गंभीरश्च स्वमलगंभीरः अतस्तं

स्वमलगंभीरम् । न मिताः अमिताश्चते गुणाश्चते अमितगुणाः जिनस्यामितगुणाः जिनामितगुणाः जिनामितगुणा एव अर्णवः , समुद्रः अथवा जिन एव अमितगुणार्णवः जिनामितगुणार्णवस्तं । पूतः पवित्रः श्रीमान् श्रीयुक्तः जगतां सारो जगत्सारः पूतश्च श्रीमांश्च जगत्सारश्च पूतश्रीमज्जगत्सारः तं । जनाः लोकाः । यात इति क्रियापदं । या गतावित्यस्य धोः लोडंतस्य प्रयोगः । क्षणादचिरादचिरेणेत्यर्थः । शिवं शोभनं शिवरूपमित्यर्थः । किमुक्तं भवति—हे जनाः जिनामितगुणार्णवं स्नात येन क्षणाच्छिवं यात इति । शेषाणि पदानि जिनामितगुणार्णवस्य विशेषणानि ॥ २ ॥

भो भव्यजन हो, अत्यन्त निर्मल, गंभीर, पवित्र, अत्यन्त सुशोभित और संसारके सारभूत श्रीजिनेन्द्रदेवके अनन्त गुणरूपी समुद्रमें स्नान करो अर्थात् उनके गुणोंमे तल्लीन होजाओ क्योंकि भगवानके गुणरूपी समुद्रमें स्नान करनेसे तुमको शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति होगी ॥ २ ॥

अर्द्धभ्रमगूढपश्चार्द्धः ।

धिया ये श्रितयेतार्त्या यातुपायान्वरानतः ।
येपांपा यातपारा ये श्रियायातानतन्वत ॥ ३ ॥

धियेति अर्द्धभ्रमगूढपश्चार्द्धः । कोऽस्यार्थः चतुरोऽपिपादानधोऽधोविन्यस्य चतुर्णां पादानां चत्वारि प्रथमाक्षराणि अन्त्याक्षराणि चत्वारि गृहीत्वा प्रथमः पादो भवति । पुनरपि तेषां द्वितीयाक्षराणि चत्वार्यन्त्यसमीपाक्षराणि च चत्वारि गृहीत्वा द्वितीयः पादो भवति । एवं

चत्वारोऽपि पादाः साध्याः। अनेन न्यायेन अर्द्धभ्रमो भवति। प्रथमार्द्धे यान्यक्षराणि तेषु पश्चिमार्द्धाक्षराणि सर्वाणि प्रविशन्ति। एकस्मिन्नपि समानाक्षरे वहूनामपि समानाक्षराणां प्रवेशो भवति। अतो-गूढपश्चार्द्धोऽप्यय भवति। एवमेव जातीयाः श्लोका मृग्याः।

धिया बुद्ध्या। ये यदोरूपं। श्रितया आश्रितया सेव्यया इत्यर्थः। इता, विनष्टा अर्त्तिः मनःपीड़ा यस्याः सेयमितार्त्तिः तया। यान् यदः शसंतस्य प्रयोगः। उपायान् उपपूर्वस्य अयगतौ अस्याजंतस्य रूपं उपगम्यानित्यर्थः। वराः प्रधानाः इन्द्रादयः नताः प्रणताः। ये च वक्ष्यमाणेन च शब्देन सह-संबन्धः। न विद्यते पाप येषां ते अपापाः शुद्धाः कर्मरहिता इत्यर्थः। यातं पारं यैस्ते यातपाराः अधिगत सर्वपदार्थाः इत्यर्थः ये च श्रीर्लक्ष्मीस्तया आयातान् अतन्वत तनु विस्तारे इत्यस्यधोर्लङंतस्य रूपम्। यथा द्रव्येण राजानः आश्रितान् विस्तारयंति। उत्तरत्र क्रियापदं तिष्ठति तेन सह सम्बन्धः॥३॥

अर्द्धभ्रमः।

आसते सततं ये च सति पुर्वक्षयालये।
ते पुण्यदा रतायातं सर्वदा माभिरक्षत ॥ ४ ॥

आसत इति—आसते आस उपवेशने इत्यस्य धोः लडन्तस्य प्रयोगः। सतत सर्वकालं। ये च, च शब्दः समुच्चये, यदः प्रयोगान् जसन्तान् सुमुच्चिनोति पूर्वप्रक्रान्तान्। सति शोभने सतः ङ्यन्तस्य रूपम्। न विद्यते क्षयः विनाशो यस्यासावक्षयः। आलयः अवस्थानम्। अक्षयश्चासावालयश्च अक्षयालयः, पुरुश्चासावक्षयालयश्च पुर्वक्षयालयः तस्मिन् पुर्वक्षयालये। ते तदः प्रयोगोऽयम्, यदः प्रयोगानपेक्षते।

पुण्यं ददते इति पुण्यदाः । रतेनायातः रतायातः अतस्तम् । रागेणा गतं भक्त्यागतामित्यर्थः । सर्वदा सर्वकालम् । मा अस्मदः इवन्तस्य प्रयोगः । अभिरक्षते क्रियापदम् । अभिपूर्वस्य 'रक्ष पालने' इत्यस्य धोः लोडन्तस्य प्रयोगः । ते इति अभिरक्षत इति च यदो रूपेण जसन्तेन सह प्रत्येकमभिसम्बध्यते । किमुक्तं भवति—वराः यान् उपायान् नताः प्रणताः धिया, किं विशिष्टया श्रितया, पुनरपि इतार्त्या । किमुक्त भवति—प्रेक्षापूर्वकारिभिः ये स्तुताः ते मा रतायातं अभिरक्षत, ये च अपापा ये च यातपाराः ये च श्रिया आयातान् प्रणतान् अतन्वत विस्तारयन्तिस्म ये च सति पुर्वक्षयालये सिद्धत्वपर्याये सतत आसते ये च पुण्यदाः ते यूय मा सर्वदा रतेन भक्त्यागत अभिरक्षत पालयत इत्युक्तं भवति ॥ ४ ॥

जिस भगवानको इन्द्रादिक देव अपनी पूज्य और निर्मल बुद्धिसे नमस्कार करते हैं । जो जिनन्द्रदेव ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरहित शुद्ध हैं, सर्वज्ञ हैं, तथा अपने आश्रित भव्यजीवो को मोक्षरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित करते हैं, और अत्यन्त उत्कृष्ट अविनाशी सिद्धत्व पर्यायमे निरन्तर विराजमान रहते हैं तथा पुण्यको देनेवाले हैं । ऐसे श्रीजिनेन्द्रदेव मुझ भक्तकी सदा रक्षा करो ॥ ३ ॥ ४ ॥

साधिकपादाभ्यासयमकः ।

नतपीलासनाशोक सुमनोवर्षभासितः ।
भामंडलासनाशोकसुमनोवर्षभासितः ॥ ५ ॥

नतपीति—प्रथमपादस्य पश्चाक्षराणि अभ्यस्तानि पुनरुच्चारितानि

द्वितीयपादश्च समस्तः पुनरुच्चारितः । नतानां प्रणतानां पीला व्याधयः डो लों वा इति लत्वन्ताः । अस्यतीति नतपीलासनः । तस्य सम्बोधनं हे नतपीलासन । न विद्यते शोको यस्यासावशोकः तस्य सम्बोधनं हे अशोक । शोभनं मनोविज्ञान यस्य सः सुमनाः तस्य सम्बोधन हे सुमनः । अव रक्ष अथवा वा समुच्चये दृष्टः । हे ऋषभ आदि तीर्थकर । आसितः स्थितः सन् । भामण्डलं प्रभासण्डल; आसनं सिंहासनम्, अशोकः अशोकवृक्षः, सुमनसः पुष्पाणि तेषां वर्षं सुमनोवर्षं पुष्पवृष्टिरित्यर्थः, तेषां द्वन्द्वः तैर्भासितः शोभितः भामण्डलासनाशोकसुमनोवर्षभासितःसन् । किमुक्तं भवति—हे ऋषभ अव इत्यादि अथवा हे भट्टारक यदा त्वं स्थितः तदा एवंविधः सन् स्थितगतश्च त्वं यदा तदा एवंप्रकारे गातः । वक्ष्यमाणेन श्लोकेन सह सम्बन्धः ॥ ५ ॥

गुप्तक्रियो मुरजबन्धः ।

दिव्यैर्ध्वनिसितछत्रचामरैर्दुन्दुभिस्वनैः ।
दिव्यैर्विनिर्मितस्तोत्रश्रमदर्दुरिभिर्जनैः ॥ ६ ॥

दिव्यैरिति—क्रिया पुनः तृतीयपादे गुप्ता दिव्यैरित्यत्र । अथवा मुरजबन्ध एवं दृष्टव्यः तद्यथा—चतुरोपि पादानधोधो व्यवस्थाप्य प्रथमपादस्य प्रथमाक्षरेण तृतीयपादस्य द्वितीयाक्षर, तृतीयपादस्य प्रथमाक्षरं प्रथमपादस्य द्वितीयाक्षरेण सह गृहीत्वा एवं नेतव्य यावत्परिसमाप्तिः । पुनर्द्वितीयपादस्य प्रथमाक्षरं चतुर्थपादस्य द्वितीयाक्षरेण, चतुर्थपादस्य प्रथमाक्षरेण सह द्वितीयपादस्य द्वितीयाक्षरं गृहीत्वा पुनरनेन विधानेन तावन्नेतव्यं यावत्परिसमाप्तिर्भवति । ततो मुरजबन्धः स्यात् ।

दिवि भवानि दिव्यानि अतस्तैर्दिव्यः द्वन्द्वं कृत्वा ध्वनिसितछत्रचामरैः पुनरपि दुन्दुभिस्वनैः दिव्यैरिति प्रत्येकं समाप्यते । दिवि आकाशे ऐः गतवान् इण गतावित्यस्य धोः लङन्तस्य रूपम् । विनिर्मितानि कृतानि स्तोत्राणि स्तवनानि विनिर्मितस्तोत्राणि तेषु । श्रमः अभ्यासः । नानाप्रकारेण मधुरस्वेणकृतस्तवनामित्यर्थः । विनिर्मितस्तोत्रश्रमः स एव दर्दुरः वाद्यविशेषः विनिर्मितस्तोत्रश्रमदर्दुरः । स एषामस्ति ते विनिर्मितस्तोत्रश्रमदर्दुरिणः । तैः सह जनैः समवसृतिप्रजाभिरित्यर्थः । किमुक्तभवति—चतुर्णिकायदेवेन्द्रचक्रधरबलदेववासुदेवप्रभृतिभिः सह गतः स्थितश्च भवान्, ततो भवानेव परमात्मा एतदुक्तं भवति ॥ ६ ॥

हे ऋषभदेव प्रभो ! जो पुरुष आपको नमस्कार करते हैं आप उनकी सम्पूर्ण व्याधियोंको दूर कर देते हैं; आप शोक रहित है सर्वोत्कृष्ट विज्ञानको धारण करनेवाले हैं। हे भगवन् जब आप समवसरणमें विराजमान होते है उस समय आप दिव्य भामण्डल, दिव्य सिंहासन, दिव्य अशोकवृक्ष, दिव्य पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, दिव्य स्वेतच्छत्र, दिव्यचमर, और दिव्यदुंदुभि, इन अष्ट प्रातिहार्योंसे बड़े ही सुशोभित होते हो । हे प्रभो ! बडे परिश्रमसे अनेक प्रकारके स्तोत्र करनेवाले भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क वैमानिक देवोंके इन्द्र, चक्रवार्ति बलदेव वासुदेव आदि समवसरणमें रहने वाले प्रजाजनोंके साथ ही आप विराजमान (शोभित) होते हो और उन्हीके साथ मोक्ष जाते हो। अतएव हे देव आप ही परमात्मा हो ॥ ५ ॥ ६ ॥

मुरजबन्धः।

यतः श्रितोपि कान्ताभि र्दृष्टा गुरुतया स्ववान्।
वीतचेतोविकाराभिः स्रष्टा चारुधियां भवान्॥७॥

यतः श्रित इति—यतः यस्मात् श्रितोपि आश्रितोपि सेवितोपि कान्ताभिः स्त्रीभिः वानव्यन्तरादरणीभिः। तथापि दृष्टा प्रेक्षिता गुरुतया गुरुत्वेन गुरोर्भावः गुरुता तया। स्ववान् आत्मवान् ज्ञानवानित्यर्थः। किं विशिष्टाभिः स्त्रीभिः वीतचेतोविकाराभिः वीतः विनष्टः चेतसः चित्तस्य विकारः कामाभिलाषः यासा ताः वीतचेतोविकाराः ताभिः वीतचेतोविकाराभिः। स्रष्टा विधाता। चार्व्यश्च ताः धियश्च चारुधियः अतस्तासां चारुधियां शोभनबुद्धीनां। भवान् भट्टारकः। किमुक्तं भवति—समवसृतिस्थलीजनसेवितोपि गुरुत्वेन ईक्षितासि यतस्ततः शोभनबुद्धीनां स्रष्टा कर्त्ता भवानेव एतदुक्तं भवति॥ ७॥

हे भगवन् समवसरणमें निर्विकार और शुद्ध चित्तवाली अनेक सुन्दरी देवियां आपकी सेवामें उपस्थित रहती हैं तथापि आप ज्ञानवान् और महान् ही माने जाते हो, अर्थात् जिनकी सेवामें स्त्रियां रहती हैं वे कभी ज्ञानी और महान् नहीं हो सकते और न वे स्त्रियां ही निर्विकार और शुद्धचित्त वाली कही जा सकती है, परन्तु आपकी सेवामें स्त्रियां रहते हुये भी आप ज्ञानी और बड़े माने जाते हो, तथा आपकी सेवामें रहते हुये भी वे स्त्रियां निर्विकार और शुद्ध चित्तवाली गिनी जाती हैं। हे प्रभो! इन सब हेतुओंसे निर्मलबुद्धिके उत्पन्न करनेवाले विधाता आप ही हो॥ ७॥

मुरजबन्धः ।

विश्वमेको रुचामाको व्यापो येनार्य्य वर्त्तते ।
शश्वल्लोकोपि चालोको द्वीपो ज्ञानार्णवस्य ते ॥८॥

विश्वमेक इति—विश्वं समस्त क्रियाविशेषणमेतत् । एकः अद्वितीयः । रुचा दीप्तानां आकः प्रापकः । कर्मणि तेयं । व्यापः व्यापकः । येन यस्मात् । हेतौ भा । हे आर्य भट्टारक । वर्त्तते शश्वत् सर्वदा । लोकः द्रव्याधारः शश्वल्लोकः । अपि च अन्यत्र । अलोकोपि अलोकाकाशमपि । द्वीपः समुद्रे जलविरहितः प्रदेशः । ज्ञान केवलज्ञानम् अर्णवः समुद्रः । ज्ञानमेवार्णवः ज्ञानार्णवः तस्य ज्ञानार्णवस्य । ते तव । अथवा लोकस्यैव विशेषणम् । रुग्भिः ज्ञानैः आकः परिच्छेद्यः व्यापः मेयः । येन कारणेन लोकश्चालोकश्च आको व्यापश्च ज्ञानार्णवस्य ते तव तेन कारणेन द्वीपो वर्त्तते इति । किमुक्तं भवति—सर्वपदार्थेभ्यः केवलज्ञानस्यैव माहात्म्य दत्त भवति ॥ ८ ॥

हे आर्य भट्टारक ! यह सम्पूर्ण षट् द्रव्यात्मक लोकाकाश तथा अलोकाकाश ज्ञानसे ही जाना जाता है और ज्ञानके ही द्वारा प्रमेय माना जाता है । इसलिये यह लोकाकाश तथा अलोकाकाश आपके ज्ञानरूपी समुद्रका एक द्वीप है । भावार्थ-जैसे द्वीप समुद्रके भीतर होता है उसीप्रकार ये समस्त, लोक अलोक आपके केवलज्ञानके भीतर हैं इसकारण यह द्वीप है अर्थात् आपका ज्ञान सबको जानता है और सबसे बड़ा है ॥ ८ ॥

मुरजबन्ध. ।

श्रितः श्रेयोप्युदासीने यत्त्वय्येवाश्नुते परः ।
क्षतं भूयो मदाहाने तत्त्वमेवार्चितेश्वरः ॥९॥

श्रितः श्रेय इति श्रितः आश्रितः । श्रेयोपि पुण्यमपि । उदासीने मध्यस्थे । अत्रापि शब्दः सम्बन्धनीयः । यत् यस्मात् । त्वयि युष्मदः ईबन्तस्य प्रयोगः । भट्टारके एव नान्यत्रेत्यर्थः । अश्नुते प्राप्नोति । परः जीवः । क्षतं विवर छिद्रं दुःखम् । भूयः पुनरपि । मदस्य अहान यस्मिन् स मदाहानः तस्मिन् मदाहाने । मदः रागविशेषः । अहानं अपरित्यागः । तत् तस्मात् । त्वमेव भवानेव अर्चितः पूजितः । ईश्वरः प्रधानः स्वामी । एतदुक्तं भवति—भट्टारके उदासीनेपि आश्रितः जीवः अश्नुते श्रेयः सरागे त्वद्व्यतिरिक्तेऽन्यत्र राजादिके जने पुनराश्रितः क्षतं दुःखमेव प्राप्नोति । तस्माद् भट्टारक एव आर्चितेश्वरः नान्यः ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! यद्यपि आप उदासीन है, वीतराग हैं तथापि जो जीव आपका आश्रय लेते हैं, आपकी सेवा करते हैं, उन्हें पुण्यकी प्राप्ति होती है और जो आपसे भिन्न राजा महाराजादिक अथवा ब्रह्मा विष्णु आदिक रागी द्वेषी हैं उनकी सेवा करनेसे दुःख ही होता है । इसलिये आप ही पूज्य ईश्वर हैं ॥ ९ ॥

---

१ अर्चित आशामीश्वरश्च अर्चितेश्वर. ।

गतप्रत्यागतार्द्धः।

भासते विभुतास्तोना ना स्तोता भुवि ते सभाः।
याःश्रिताःस्तुत गीत्या नु नुत्या गीतस्तुताःश्रिया॥१०॥

भासते इति...अस्य श्लोकस्यार्द्धं पंक्त्याकारेण विलिख्य क्रमेण पठनीयम्। क्रमपाठे यान्यक्षराणि विपरीतपाठेपि तान्येवाक्षराणि यतस्ततो गतप्रत्यागतार्द्धः। एवं द्वितीयार्द्धमपि योज्यम्। एवं सर्वत्र गतप्रत्यागतार्द्धश्लोकाः दृष्टव्याः।

भासते शोभेत। विभोर्भावः विभुता स्वामित्वम्। तया। अस्ताः क्षिप्ताः ऊनाः न्यूनाः यकाभिः ता विभुतास्तोनाः। ना पुरुषः। स्तोता स्तुतेः कर्त्ता। भुवि लोके। ते तव। सभाः समवसृतीः, शसन्ताः दृष्टव्याः। याः यदः टावन्तस्य प्रयोगः। श्रिताः आश्रिताः। हे स्तुत पूजित। गीत्या गेयेन। नु वितर्के। नुत्या स्तवेन गीताश्च ताः स्तुताश्च गीतस्तुताः। श्रिया लक्ष्म्या। श्रिया आश्रिताः याः सभाः गीत्या गीताः नुत्या स्तुताः संजाताः ना स्तोता पुरुषः भासते॥ १०॥

हे पूज्य! जो पुरुष आपकी स्तुति करता है, वह तीर्थंकर पद पाकर इस लोकमें आपकी समान उस समवसरणरूप सभाको सुशोभित करता है कि जो सभा अंतरंग बहिरंग लक्ष्मीसे सुशोभित है तथा जिसका वर्णन बड़े बड़े स्तोत्रोंसे किया जाता है और इन्द्र चक्रवर्ती आदि बड़े २ पुरुषोंके नमस्कार करनेमें पूज्य है तथा जिसने अन्य सब सभायें अस्त (मात) करदी है॥ १०॥

श्लोकयमकः ।

स्वयं शामयितुं नाशं विदित्वा सन्नतस्तु ते ।
चिराय भवते पीड्यमहोरुगुरवेऽशुचे ॥११॥

स्वयंशमेति—द्वौ श्लोकौ एतौ पृथगर्थौ दृष्टव्यौ ।

स्वयं स्वतः । शमयितुं विनाशयितुम् । नाशं विनाशम् कर्म । विदित्वा ज्ञात्वा उपलभ्य । सन्नतः सम्यग् नतः प्रणतः । तु अत्यर्थम् । ते तुभ्यम् । चिराय नित्याय अक्षयपदनिमित्तं वा । भवते प्रभवते भूसत्तायामित्यस्य धोः शत्रन्तस्य अबन्तस्य प्रयोगः । पीड्यं सविघातम्, न पीड्यं अपीड्यम्, महः तेजः, अपीड्यं च तन्महश्च तदपीड्यमहः, अपीड्यमहसः रुक् अपीड्यमहोरुक्, तया उरुः महान् अपीड्यमहोरुगुरुः तस्मै अपीड्यमहोरुगुरवे । अथवा अपीड्यमहाश्च रुगुरुश्चासौ अपीड्यमहोरुगुरुः तस्मै अपीड्यमहोरुगुरवे । शुक् शोकः, न शुक् अशुक् तस्मै अशुचे । अशोकार्थे भवते तेन सम्बन्धः । तदर्थं अवियं दृष्टव्या । अन्यत् सुगमम् । उत्तरश्लोके स्थितं क्रियापदं अपेक्षते ॥ ११ ॥

स्वयं शमयितुं नाशं विदित्वा सन्नतः स्तुते ।
चिराय भवतेपीड्य महोरुगुरवे शुचे ॥१२॥

स्वयमिति—अयः पुण्यम् शोभनः अयः स्वयः तं स्वयम् । शं सुखम् । अयितु गन्तुम् । ना पुरुषः जीवः । अशं दुःखम् । विद् ज्ञानवान् अथवा विचारवान् । इत्वा गत्वा । सन् विद्यमानः । अतः अस्मात् कारणात् । स्तुते स्तुतिविषये । चिराय चिरेण अनन्तकालेन । अथवा

अचिरेण तत्क्षणात्। ज्ञि संज्ञकोयम्। भवते प्राप्नुते भू प्राप्ताविस्यस्य धोः आदृषाद्वा इति अणिजन्तस्यापि प्रयोगो भवति। अपि सम्भावने। हे ईड्य पूज्य। महती उर्वी गौ वाणी यस्यासौ महोरुगुः, महोरुगुरेव रविः महोरुगुरविः, तस्य सम्बोधनं हे महोरुगुरवे। शुचे शुचे शुद्ध सर्वकर्मनिर्मुक्ते। एतदुक्तं भवति। तुभ्यं अशोकार्थं प्रवते अप्रतिहत केवलज्ञानदीप्तये आत्मना सन्नतः ना पुरुषः प्रेक्षापूर्वकारी विनाशं विनाशयितुं मोक्षार्थं सुखं गन्तु हे ईड्य महोरुगुरवे दुःखं गत्वा पुण्यमपि प्राप्नुते॥ १२॥

हे पूज्य, आप दिव्यध्वनिके द्वारा जगतको प्रकाश करनेवाले अपूर्व सूर्य हो, आपका केवल ज्ञान रूपी प्रकाश अप्रतिहत है कहीं रुक नहीं सकता इसीसे आप पूज्य हैं। आप स्वयं प्रभावशाली हैं, शोकादि दोषोंसे रहित हैं। हे भगवन् जो विचारवान् पुरुष आपके समीप आकर दुःखोंको नाश करनेकेलिये तथा अक्षय-पदकी प्राप्तिकेलिये साक्षात नमस्कार करता है और सम्पूर्णकर्मों को नाश करनेवाली आपकी स्तुतिमे तल्लीन होता है वह अनेक कष्टोंको सहन करता हुआ भी अन्तमे पुण्य और मोक्षरूपी सुख को ही प्राप्त होता है॥ ११॥ १२॥

प्रथमपादोद्धृतपश्चार्द्धैकाक्षरविरचितश्लोक.।

ततोतिता तु तेतीतस्तोतृतोतीतितोतृतः।
ततोऽतातिततोतोते ततता ते ततोततः॥ १३॥

---

१ आत्मनेपदस्य।

ततोतीति...प्रथमपादे यान्यक्षराणि तानि सर्वाण्यक्षराणि पश्चिमार्द्धे यत्र तत्र व्यवस्थितानि, नान्यानि सन्ति ।

तता विस्तीर्णा ऊतिः रक्षा तताचासावूतिश्च ततोतिः तस्या भावः ततोतिता। तुर्विशेषे । अति पूजायां वर्त्तमानो क्षि गि ति सञ्ज्ञो न भवति अतएव केवलस्यापि प्रयोगः । किमुक्त भवति-विशिष्ट-पूजितप्रतिपालनत्वम् । ते तव युष्मदः प्रयोगः । इतः इदमः प्रयोगः एभ्य इत्यर्थः । केभ्यः तोतृतोतीतितोतृतः, अस्य विवरण-तोतृता ज्ञातृता, कुतः तु गतौ सौत्रिकोयं धुः सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्थे वर्त्तन्ते इति । ऊतिः रक्षा वृद्धिर्वा अव रक्षणे इत्यस्य धोः क्त्यन्तस्य प्रयोगः । तोतृतोतेः इतिः तोतृतोतीतिः ज्ञातृत्ववृद्धिप्रापणमित्यर्थः । अथवा ज्ञातृत्वरक्षणविज्ञानमिति वा । तुदन्तीति तोतॄणि तुद् प्रेरणे इत्यस्य धोः प्रयोगः । तोतृतीति तोतॄणि ज्ञानावरणादीनीत्यर्थः । तेभ्यः तोतृतोतीतितोतृतः । ततः तस्मात् । तातिः परिग्रहः परायत्तत्वम् । दृश्यते चाय लोके प्रयोगः युष्मत्तात्या वयं वसामः युष्मत्परिग्रहेणेत्यर्थः । न तातिः अतातिः अतात्या तता विस्तीर्णाः अतातितताः अपरिग्रहेण महान्तो जाता इत्यर्थः । अतातिततेषु उता बद्धा ऊतिः रक्षा यस्य स अतातितततोतोतिः तस्य सम्बोधनं हे अतातितततोतोते । ततता विशालता प्रभुता त्रिलोकेशत्वमित्यर्थः । ते तव । तत विशाल विस्तीर्णे उतं बन्धः ज्ञानावरणादीनां संश्लेषः । तत च तदुतं च ततोतम् । तस्य तीति ततोतताः तस्य सम्बोधन हे ततोततः ॥ १३ ॥

हे प्रभो ! आपने विज्ञान और वृद्धिकी प्राप्तिको रोकदेने-वाले इन ज्ञानावरणादिक कर्मोंसे अपनी विशेष रक्षा की है अर्थात्

ज्ञानावरणादि कर्मोंको नाश कर केवलज्ञानादि आत्मीय गुण प्राप्त किये हैं। तथा आप परिग्रह रहित स्वतंत्र हैं संसारी जीवों के समान परिग्रहादिक के आधीन नहीं हैं इसीलिये पूज्य और सुरक्षित हैं। हे प्रभो! आप तीनों लोकोंके स्वामी और ज्ञानावरणादि कर्मवन्धोंका नाश करनेवाले हैं। अतएव हे देव मेरा भी जन्ममरणरूपरोग नष्ट करदीजिये ॥ १३ ॥

एकैकाक्षरविरचितैकैकपादः श्लोकः।

येयायायाययेयाय नानानूनाननानन।
ममाममाममामामितातततीतिततीतितः ॥ १४ ॥

येयेति—येयः प्राप्यः अयः पुण्यम् यैः ते येयायाः, आयः प्रातः अयः सुखं येषां ते आयायाः, येयायाश्च आयायाश्च येयायायायाः तैः येयः प्राप्यः अयः मार्गो यस्यासौ येयायायाययेयायः तस्य सम्बोधन हे येयायायाययेयाय। नाना अनेकं, अनूनं सम्पूर्णं, नाना च अनूनं च नानानूने। आननं मुखकमलम्, अनन केवलज्ञानम्, आननं च अननं च आनननानने। नानानूने आनननानने यस्यासौ नानानूनाननाननः। तस्य सम्बोधनं हे नानानूनाननानन। मम अस्मदः प्रयोगः। ममः मोहः दृश्यते च लोके प्रयोगः कामः क्रोधः ममत्वमिति। न विद्यते ममो यस्यासौ अममः तस्य सम्बोधनं हे अमम। आमो व्याधिस्तम्। आम क्रियापदम्। आम रोगे इत्यस्य धोः रूपम्, आमं आम। न मिता अमिता अपरिमिता। आततिः महत्त्वं। अमिता आततिर्यासां ताः अमिताततयः, ईतयः व्याधयः, अमिताततयश्च ताः ईतयश्च अमिताततीतयः,

तासां ततिः संहतिः अमितातततीतिततिः । इतिः गमन प्रसरः । अमि-
ाततीतिततेः इतिः अमितातततीतिततीतिः । तां तस्यतीति अमितात-
तीतितततीतिताः । तस्य सम्बोधन हे अमितातततीतिततीतितः । किमुक्त
भवति । हे एवं गुणविशिष्ट मम आमं रोगं आम विनाशय ॥ १४ ॥

हे भगवन्! आपका यह सच्चा मोक्षमार्ग बड़े २ पुण्य-
वान और सुखी लोगोंको ही प्राप्त होता है। लोगोंको आप
चतुर्मुख दृष्टिगोचर होते हो यह आपके अतुल अतिशयकी
महिमा है। आपका ज्ञान भी परिपूर्ण है आप मोहरहित
हो तथापि संसारसम्बन्धी अनेक बडी बडी व्याधियोंको
सहज ही नष्ट करदेते हो। हे भगवन्! इसीलिये मैं प्रार्थना
करता हूं कि मेरा भी संसारसम्बन्धी जन्ममरणरूप रोग
शीघ्र ही नष्ट करदीजिये ॥ १४ ॥

पादाभ्याससर्वपादान्तयमकः।

गायतो महिमायते गा यतो महिमाय ते
पद्मया स हि तायते पद्मयासहितायते ॥१५॥

गायतो मेति—यादृग्भूतः प्रथमः पादः तादृग्भूतो द्वितीयोपि।
यादृग्भूतस्तृतीयः तादृशश्चतुर्थोपि अयते इति सर्वपादेषु समान यतः
अतो भवति पादाभ्याससर्वपादान्तयमकः।

गायतः स्तुतिं कुर्वतः। कै गै रै शब्दे इत्यस्य धोः शन्नन्तस्य
प्रयोगः। महिमा माहात्म्यम्। अयते गच्छति। गाः वाणीः, गो
इत्यस्य शसन्तस्य रूपम्। यतः यस्मात्। महिमान अयते महिम्नायते स्म

वा महिमायः तस्य सम्बोधनं हे महिमाय । ते तव । पद् पादः । दृश्यते च पच्छब्दस्य लोके प्रयोगः गौः पदा न स्पृष्टव्या । मया अस्मदः भान्तस्य प्रयोगः । सः तदः वान्तस्य रूपम् । हि निपातोयं स्फुटार्थे । तायते विस्तार्यते तस्य पादस्य गुणाः विस्तार्यन्ते तेषां विस्तारे सति पादस्यापि विस्तारः कृतः । गुणगुणिनोरभेदः । पद्मया लक्ष्म्या सहिता आयतिः शरीरायामः यस्यासौ पद्मयासहितायतिः गमकत्वात्समासविधिः । यथा देवदत्तस्य गुरुकुलम् । यथाय गुरुशब्दोन्यमपेक्षते एवं सहितशब्दोपि । अथवा पद्मेषु यातीति पद्मयाः । सह हितेन वर्त्तत इति सहिता । आयतिः आज्ञा । सहिता आयतिर्यस्यासौ सहितायतिः पद्मयाश्चासौ सहितायातिश्च पद्मयासहितायातिः । तस्य सम्बोधन हे पद्मयासहितायते । किमुक्त भवति–हे महिमाय पद्मया सहितायते ते पदं गायतः महिमां[1] अयते गाः यतः ततो मया स हि पद् तायते विस्तार्यते स्तूयते इत्यर्थः ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! आप स्वयं महत्वको प्राप्त हुये हो, संसारको हित करनेवाली आपकी आज्ञा अद्यावधि भव्यरूपी कमलोंको सुशोभित कर रही है। हे देव ! यह बात निश्चित है कि आपकी स्तुति करनेसे इस जड़रूप वाणीका भी महत्त्व बढ़ता है । इसीलिये मैं भी आपके चरणकमलोंकी स्तुति करता हूं ॥ १५ ॥

इति ऋषभदेवस्तुतिः ।

---

१ महिमा गाः अयते इत्यनेन महिम्नः स्तुतिविषयत्वमुक्तम्

श्लोकयमकः।

सदक्षराजराजित प्रभो दयस्व वर्द्धनः।
सतां तमो हरन् जयन् महो दयापराजितः॥१६॥

सदेति—सत् शोभनम्। अक्षर अनश्वर। न विद्यते जरा वृद्धत्व मस्यासावजरः तस्य सम्बोधनं हे अजर। अजित द्वितीयतीर्थंकरस्य नाम। प्रभो स्वामिन्। दयस्व-दय दाने इत्यस्य धोः लोडन्तस्य रूपम्। वर्द्धनः नन्दनः त्व यतः। सता भव्यलोकानाम्। तमः अज्ञानम्। हरन् नाशयन्। जयन् जय कुर्वन् इत्यर्थः। महः तेजः केवलज्ञानम्, दयस्व इत्यनेन सम्बन्धः। दयापर दयाप्रधान। न जितः अजितः। किमुक्त भवति—अन्ये सर्वे जिताः त्वमजितः अतः हे अजित भट्टारक महः सद्ज्ञानं दयस्व॥ १६॥

हे अजितदेव! काम क्रोधादिक अन्तरंग शत्रुओंने समस्त संसारको जीतलिया परन्तु वे आपको न जीतसके इसलिये ही यह संसार आपको 'अजितदेव' करके पुकारता है। हे प्रभो! आप विनाशरहित हैं, जरारहित है, भव्यजीवोंके अज्ञान रूपी अंधकारको नाश करनेवाले हैं। वर्द्धमान, दयालु और विजयी हैं। हे अजितदेव जिसके प्रसादसे आप ऐसे हुये हो वह सम्यग्ज्ञान मुझे भी दीजिये॥ १६॥

सदक्षराजराजित प्रभोदय स्ववर्द्धनः।
स तान्तमोह रंजयन् महोदयापराजितः॥१७॥

सदक्षेति—सह दक्षैर्विचक्षणैः सह वर्त्तन्त इति सदक्षाः । सदक्षाश्च ते राजानश्च सदक्षराजानः तैः राजितः शोभितः सदक्षराजराजितः तस्य सम्बोधनं हे सदक्षराजराजित । प्रभायाः विज्ञानस्य उदयो वृद्धिर्यस्यासौ प्रभोदयस्तस्य सम्बोधनं हे प्रभोदय । स्वेषां स्वानां वा वर्द्धनः नन्दनः स्ववर्द्धनस्त्वम् । अथवा स्ववर्द्धनः अस्माकम् । स एवं विधिः स्त्वं । तान्तः विनष्टः मोहः मोहनीयकर्म यस्यासौ तान्तमोहः तस्य सम्बोधनं भो तान्तमोह । रजयन् अनुरागं कुर्वन् इत्यर्थः । महान् पृथुः पूज्यः उदयः उद्भूतिर्येषां ते महोदयाः देवेन्द्रचक्रेश्वरादयः । अपरान् अन्तःशत्रून् मोहादीन् आसमन्तात् जयंतीति कर्त्तरि क्विप् अपराजितः । महोदयाश्च ते अपराजितश्च ते महोदयापराजितः । अथवा द्वन्द्वः समासः तान् महोदयापराजितः कर्मणि इपो बहुत्वम् । समुदायार्थः—हे अजित भट्टारक सदक्षराजराजित प्रभोदय स्ववर्द्धनः त्वं सः तान्तमोह रंजयन् महोदयापराजितः महः दयस्व ॥ १७ ॥

हे भगवन् आपकी सेवामें अनेक सुचतुर राजा सदा उपस्थित रहते हैं, आपका विज्ञान सदा उदय ही रहता है आप ही अपने आत्माके उन्नति कारक हैं, मोहरहित हैं, बड़ी २ ऋद्धियोंके धारक इन्द्र चक्रवर्त्ति तथा काम क्रोधादिक अन्तरंग शत्रुओंको जीतनेवाले मुनि आदिकोंको प्रसन्न करनेवाले हैं। हे प्रभो! जिसके प्रसादसे आप ऐसे हुये हो वह सम्यग्ज्ञान मुझे भी दीजिये ॥ १७ ॥

इति अजितनाथस्तुतिः ।

अर्द्धभ्रमः ।

नचेनो न च रागादिचेष्टा वा यस्य पापगा ।
नो वामैः श्रीयतेपारा नयश्रीर्भुवि यस्य च ॥१८॥

नचेन इति—नच प्रतिषेधवचनम् । इनः स्वामी । नच प्रतिषेधे । रागः आदिर्येषां ते रागादयः तेषां चेष्टा कायव्यापारः रागादिचेष्टा । वा समुच्चये । यस्य देवस्य तव । पापं गच्छतीति पापगा । चेष्टा च पापगा यस्य नचास्ति । नो नच । वामैः क्षुद्रैः मिथ्यादृष्टिभिः । श्रीयते आश्रीयते । अपारा अगाधा अर्थनिचिता । यस्य ते । नयस्य आगमस्य त्वदभिप्रायस्य श्रीः लक्ष्मीः नयश्रीः । भुवि लोके । हे शंभव एवंविशिष्टस्त्वं मा पायाः । उत्तरश्लोकेन सम्बन्धः ॥ १८ ॥

अर्द्धभ्रमः ।

पूतस्वनवमाचारं तन्वायातं भयाद्रुचा ।
स्वया वामेश पाया मा नतमेकार्च्य शंभव ॥१९॥

पूतस्वेति—पूतः पवित्रः सु सुष्ठ अनवमः[1] गणधराद्यनुष्ठितः आचारः पापक्रियानिवृत्तिर्यस्यासौ पूतस्वनवमाचारः अतस्त पूतस्वनवमाचारम् । तन्वा शरीरेण आयातं आगतम् । भयात् संसारभीतेः रुचा । तेजसा । स्वया आत्मीयया आत्मीयतेजसेत्यर्थः । वामाः प्रधानाः प्रधानेऽपि वामशब्दः प्रवर्त्तते । वामानामीशः स्वामी वामेशः तस्य सम्बोधनं हे वामेश । पायाः रक्ष । पा रक्षणे इत्यस्य धोः आशीर्लिङन्तस्य प्रयोगः ।

[1] न अवम. अनवम. अनधम इत्यर्थः । "निकृष्टप्रतिकृष्टार्वरेफयाप्यावमाधमा." इत्यमरः

मा अस्मदः इवन्तस्य रूपम् । नतं प्रणतम् । एकैः प्रधानैः अर्च्यः पूज्यः एकार्च्यः, अथवा एकश्चासावर्च्यश्च एकार्च्यः तस्य सम्बोधन हे एकार्च्य । शम्भवः तृतीयतीर्थंकरभट्टारकः तस्य सम्बोधन हे शम्भव किमुक्तं भवति—यस्य रागादिचेष्टा च पापगा नास्ति यस्य नाश्रीयते वामैः नयश्रीः हे शम्भव सइनः त्वं स्वतेजसा मा आगतं शोभनाचार नत पायाः एतदुक्तं भवति ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! शंभवनाथ ! हे जगतपूज्य ! हे मुख्य नायक ! हे स्वामिन् ! आपकी चेष्टा न तो रागादि रूप ही है और न पापरूप है । हे प्रभो ! मिथ्यादृष्टि लोग आपके अगाध और तत्त्वस्वरूप अभिप्रायोंकी शोभाका आश्रय कभी नहीं ले सकते हे देव ! मैं संसारके दुःखोंसे डरकर आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूं, आपको वार २ नमस्कार करता हूं, मेरा आचार भी निर्दोष और पवित्र है । हे प्रभो ! अपने प्रतापसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

अर्द्धभ्रमः ।

धाम स्वयममेयात्मा मतयाद्भ्रया श्रिया ।
स्त्वया जिन विधेया मे यदनन्तमविभ्रम ॥२०॥

धामेति—धाम अवस्थान तेजो वा । शोभनः अयः पुण्य सुख वा यस्मिन् तत् स्वयम् । अथवा स्वयं आत्मना । अमेयः अपरिमेयः आत्मा ज्ञान स्वभावो वा यस्यासौ अमेयात्मा । मतया अभिगतया । अदभ्रया महत्या । श्रिया लक्ष्म्या । स्वया आत्मीयया । हे जिन परमे-

१ शदभ्रं बहुलं बहु इत्यमर. । २ स्वाज्ञातावात्मनि

श्वर । विधेयाः कुरु । वि पूर्वः धाञ् करोत्यर्थे वर्त्तते । मे मम । यत् अनन्त न विद्यते अन्तो विनाशो यस्य तदनन्त धाम । विभ्रमः मोहः न विद्यते विभ्रमो यस्यासावविभ्रमः । तस्य सम्बोधन हे अविभ्रम । एतदुक्त भवति—हे जिन अविभ्रम स्वकीयया श्रिया धाम अवस्थान यदनन्तं मे मम तत् विधेयाः ॥ २० ॥

हे जिन ! मोहरहित ! भगवन् ! आप अपनी, अभिमत और बड़ी भारी लक्ष्मीके होनेसे ही अनन्तज्ञानी हो । हे प्रभो ! आप मुझे भी ऐसा ज्ञान वा तेज दीजिये जिसका कभी नाश न हो ॥ २० ॥

इति शंभवनाथस्तुतिः ।
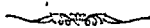
अर्द्धभ्रम ।

अतमः स्वनतारक्षी तमोहा वन्दनेश्वरः ।
महाश्रीमानजो नेता स्वव मामभिनन्दन ॥ २१ ॥

अतम इति—तमः अज्ञानं न विद्यते तमो यस्यासावतमाः तस्य सम्बोधन हे अतमः । स्वतः आत्मनः नताः प्रणताः स्वास्मिन् नताः या स्वनताः । आरक्षणशीलः आरक्षी । स्वनतानामारक्षी स्वनतारक्षी । तमो मोह च हन्ति जहातीति तमोहा त्व वन्दनेश्वर. वन्दनायाः ईश्वरः स्वामी वदनेश्वरः । महती चासौ श्रीश्च महाश्रीः महाश्रीः विद्यते यस्यासौ महाश्रीमान् । न जायत इत्यज. । नेता नायकः । स्वव सुपूर्वस्य अव रक्षणे इत्यस्य धोः लोड तस्य रूपम् । मा अस्मदः इदन्तस्य रूपम् । अभिनन्दनः चतुर्थजिनेश्वरः तस्य सम्बोधन हे अभिनन्दन ।

किमुक्तं भवति—हे अभिनन्दन अतमः स्वनतारक्षी सन् त्वं तमोहा सन् इत्येवमादिः सन् मां अभिरक्ष ॥ २१ ॥

हे अभिनन्दन जिनदेव ! आप अज्ञानान्धकाररहितहो। जो आपको नमस्कार करते हैं आप उनकी सर्वथा रक्षा करने वाले हो। आप मोहरहित हो। सबके नायक हो। अज हो। अनन्त चतुष्टय तथा समवसरणादि विभूतिकी शोभासे सुशोभित हो और सबके वन्द्य हो। हे प्रभो ! मेरी भी रक्षा कीजिये ॥ २१ ॥

गर्भे महादिशि चैकाक्षरश्चक्रश्लोकः।

नन्द्यनन्तर्द्ध्यनन्तेन नन्तेनस्तेभिनन्दन ।
नन्दनर्द्धिरनम्रो न नम्रो नष्टोभिनन्द्य न ॥२२॥

नन्द्यनन्तेति—चक्र भूमौ व्यालिख्य गर्भे चक्रमध्ये चतसृषु महादिक्षु च एकाक्षरैः समानाक्षरैर्भावितव्यम् । चक्रमध्ये नकारं दत्त्वा, तस्योर्ध्वं वहिर्भागे अरमध्ये 'न्द्य' न्यस्य तस्याप्यूर्ध्वं महादिशि नकारं संस्थाप्य, नेमिमध्ये दाक्षिणदिशि 'न्तर्द्ध्य' अक्षरे न्यसनीये। पुनर्महादिशि नकारं संस्थाप्य अरमध्ये 'न्ते' न्यस्य, गर्भे पुनरपि नकारो न्यसनीयः। पुनरपि गर्भे नकारः। अरमध्ये 'न्ते' न्यस्य, महादिशि नकारः। एवं सर्वत्र तस्य संदृष्टिः। सप्ताक्षराणि समानानि गर्भाक्षरेणैवैकेन लभ्यन्ते। अरमध्ये चत्वार्य्यक्षराणि अन्यानि समानानि लभ्यन्ते। महादिक्ष्वपि चत्वार्यक्षराणि अन्यानि समानानि लभ्यन्ते एवमेतानि पञ्चदशाक्षराणि चक्रस्थितसप्तदशाक्षराणि गृहीत्वा श्लोकः सम्पद्यते। एवं सर्वे चक्रश्लोका द्रष्टव्याः।

अस्यार्थः कथ्यते—नन्दा वृद्धिः सोऽस्यास्तीति नन्दी अथवा नन्दनशीलो नन्दी असुप्यपि शीले णिन् भवति । अनन्ता ऋद्धिः विभूतिर्यस्यासौ अनन्तर्द्धिः । न विद्यते अन्तो विनाशो यस्यासावनन्तः नन्दी चासौ अनन्तर्द्धिश्च नन्द्यनन्तर्द्धिः सचासावनन्तश्च नन्द्यनन्तर्ध्यनन्तः तस्य सम्बोधनं हे नन्द्यनन्तर्ध्यनन्त । इन स्वामिन् । नन्ता स्तोता । इनः स्वामी, सम्पद्यत इत्यध्याहार्यः । ते तव । हे अभिनन्दन । नन्दना ऋद्धिर्यस्यासौ नन्दनर्द्धिः । न नम्रः अनम्रः । न प्रतिषेधे । किमुक्तं भवति—प्रवृद्धश्रीर्यः पुरुषः स तव अनम्रो अप्रणतः न किन्तु नम्र एव । नम्र प्रणतः यः स नष्टो विनष्टो न । अभिनन्द्य त्वा अभिनन्द्य इत्यध्याहार्यः । किमुक्तं भवति—हे अभिनन्दन ते नन्ता इनः सम्पद्यते कुतः नन्दनर्द्धिः यतः अप्रणतो नास्ति ते अभिनन्द्य च यो नम्र स विनष्टो न यतः ॥ २२ ॥

हे अभिनन्दन ! स्वामिन् ! आप अनन्त ऋद्धियोंके धारक हैं और वे ऋद्धियां भी ऐसी हैं जिनका कभी नाश नहीं होता, जो सदा बढ़ती ही रहती हैं । हे प्रभो ! आपको जो नमस्कार करता है वह अवश्य ही सबका स्वामी—(ईश्वर) हो जाता है। क्योंकि संसारमे जो जो बड़े बड़े ऋद्धिधारी हैं वे सबही आपको नमस्कार करते हैं । और जो जो आपको नमस्कार करते हैं वे कभी नष्ट नहीं होते । अर्थात् वे अवश्य ही अक्षय ऋद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

गर्भे महादिशि चैकाक्षरचक्रश्लोक ।

नन्दनश्रीर्जिन त्वा न नत्वा नर्द्ध्या स्वनन्दि न ।

नन्दिनस्ते विनन्ता न नन्तानन्तोभिनन्दन ॥२३॥

नन्दनेति—नन्दना चासौ श्रीश्च नन्दनश्रीः पुरुषो वा। हे जिन। त्वा युष्मदः इमन्तस्य प्रयोगः। न न नत्वा किन्तु नत्वैव। ऋद्‌ध्या विभूत्या सह स्वनन्दि, क्रियाविशेषणम्। स्वनन्दि यथा भवति तथा स्वहर्षं यथा भवति। नन्दिनः समृद्धिमतः। ते तव। विनन्ता च विशेषनन्ता। न न नन्ता स्तोता। अनन्तः अविनश्वरः सिद्धः सम्पद्यते यतः। हे अभिनन्दन। किमुक्तं भवति—हे अभिनन्दन जिन नन्दिनस्ते नन्दनश्रीः ऋद्‌ध्या सह त्वा न न नत्वा विनन्ता च तव न न स्यात् अनन्तः सर्वोपि अनन्तासिद्धः सम्पद्यते ॥ २३ ॥

हे अभिनन्दन जिन ! आप सदा अनन्त चतुष्टयादि समृद्धि कर सुशोभित रहते हैं। हे देव ! जो समृद्धिशाली पुरुष हर्षित होकर अपनी विभूतिके साथ आपकी पूजा करता है आपको नमस्कार करता है वह अवश्य ही अनन्त अर्थात् अनन्त गुणों का धारक सिद्ध हो जाता है ॥ २३ ॥

गर्भमहादिशैकाक्षरचक्रश्लोकः ।

नन्दनं त्वाप्यनष्टो न नष्टो नत्वाभिनन्दन ।
नन्दनस्वर नत्वेन नत्वेनः स्यन्न नन्दनः ॥ २४ ॥

नन्दनं त्वेति—नन्दन वृद्धिकर। त्वा युष्मदः इमन्तस्य रूपम्। आप्य प्राप्य। नष्टो विनष्टो न। नष्टो विनष्टोऽनत्वा अस्तुत्वा। हे अभिनन्दन। नन्दनः प्रीतिकरः स्वरो वचनं यस्यासौ नन्दनस्वरः तस्य सम्बोधन हे नन्दनस्वर। त्वा त्वत्प्रसादार्थं। त्वा नत्वा स्तुत्वा। इन

स्वामिन् । नतु एनः पापम् स्यन् । विनाशयन् न नन्दनः किन्तु नन्दन एव । द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं गमयतः । किमुक्त भवति । हे अभिनन्दन त्वा नन्दन आप्य न नष्टः यो नष्टः सः अनत्वैव, त्वा नत्वा एनः स्यन न तु न नन्दनः किन्तु नन्दन एव ॥ २४ ॥

हे हितमितभाषी ! अभिनन्दन जिन ! हे सदा वर्द्धमान-रूप ! आपको पाकर संसारमें कोई नष्ट नहीं हुआ अर्थात् आपके चरण कमल जिसको मिल गये वह अवश्य ही अविनश्वर सिद्धपर्यायको प्राप्त हो गया । नश्वर अर्थात् सदा जन्म मरण करनेवाला केवल वही रहगया जिसने आपको नमस्कार नहीं किया । हे स्वामिन् ! आपको जो नमस्कार करता है वह अवश्यही स्वयं वर्द्धमान (हमेशह बढ़ने वाला) हो जाता है ॥ २४ ॥

इति अभिनन्दनस्तुतिः

—

समुद्गकयमक ।

देहिनो जयिनः श्रेयः सदातः सुमते हितः ।
देहि नोजयिनः श्रेयः स दातः सुमतेहितः ॥२५॥

देहीति—यादृग्भूत पूर्वार्द्धं पश्चार्द्धमपि तादृग्भूतमेव समुद्गक इव समुद्गकः ।

देहिनः प्राणिनः । जयिनः जयनशीलस्य । कर्त्तरि ता । श्रेयः [illegible] । सदा सर्वकालम् । अतः अस्माद्धेतोः । हे सुमते । हितः त्वम् ।

सुमतिरिति पंचमतीर्थंकरस्य नाम। देहि डुदाञ् दाने इत्यस्य धोः लोडन्तस्य रूपम्। नः अस्माकम्। न जायते इत्यजः। इन स्वामिन्। श्रेयः सुखम्। स एवं विशिष्टस्त्वम्। हे दातः दानशील। मतं आगमः ईहित चेष्टितम्। मतं च ईहित च मतेहिते शोभने मतेहिते यस्यासौ सुमतेहितः। किमुक्तं भवति—यो देहिनः श्रेय यो वा दानशीलः यो वा सुमतेहितः हे सुमते स त्वं अतः देहि नःश्रेयः॥ २५॥

हे भगवन्! सुमतिदेव! आप काम क्रोधादिक अन्तरंग शत्रुओंको जीतने वाले और प्राणियोंको सदा कल्याण करनेवाले हो, सदा हित करनेवाले हो, सबका कल्याण करना आपका स्वभाव है, आपका निरूपण किया हुआ—आगम, आपका कर्त्तव्य सर्वोत्तम है। हे अज हे स्वामिन्! मुझेभी परम श्रेय अर्थात् मोक्ष दीजिये॥ २५॥

चक्रश्लोकः।

वरगौरतनुं देव वंदे नु त्वाक्षयार्जव।
वर्जयार्त्तिं त्वामार्याव वर्यामानोरुगौरव॥ २६॥

वरगौरेति—वरा श्रेष्ठा गौरी उत्तप्तकाञ्चननिभ तनुः शरीरं यस्यासौ वरगौरतनुः अतस्तं वरगौरतनुं। हे देव भट्टारक। वन्दे स्तौमि। नु अत्यर्थम्। त्वा भट्टारकम्। क्षयः विनाशः आर्जवं

१ अज शब्दः स्वौजसमौडिति सुप्रत्ययः। ससजुषोरुरिति रुत्वम्। भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि इति यादेशः। लोपः शाकल्यस्येति विकल्पेन यकार लोपः। ततो नात्र विकल्पत्वाल्लोपः।

ऋजुत्वम्, अप्रेक्षापूर्वकारित्वमित्यर्थः। क्षयश्च आर्जवं च क्षयार्जवे- न विद्येते क्षयार्जवे यस्यासावक्षयार्जवः तस्य सम्बोन्धनं हे अक्षयार्जव। वर्जय निराकुरु। आर्त्ति पीडाम्। त्वं आर्य योगिन्। नः इत्यध्याहार्यः तेन सम्बन्धः। नः अस्मान् अव रक्ष। हे वर्य प्रधान। अमानोरुगौरव अमानं अपरिमाणं उरु महत् गौरव गुरुत्वं यस्य सः अमानोरुगौरवः तस्य सम्बोधनं हे अमानोरुगौरव। एतदुक्तं भवति—हे देव त्वा ऱ ै। अस्माकं आर्त्ति वर्जय। अस्मान् रक्ष च॥ २६॥

हे देव! सुवर्णके समान गौरवर्ण! आपका यह शरीर अत्यन्त मनोहर है। हे आर्य! आप सर्वोत्तम हैं। आपको मैं बार बार नमस्कार करता हूं। हे अविनश्वर! वीतराग! आप- की महिमा अनन्त और सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिये मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे जन्म मरण सम्बन्धी दुःखोको दूर कर मेरी रक्षा कीजिये॥ २६॥

इति सुमतिनाथस्तुतिः।

अर्द्धभ्रमः।

अपापापदमेयश्रीपादपद्म प्रभोऽर्दय।
पापमप्रतिमाभो मे पद्मप्रभ मतिप्रद॥ २७॥

अपापेति—पाप पुराकृतं दुष्कृतम्, आपत् अन्यकृतशारीर- मानसदुःखम्, पापं च आपच्च पापापदौ न विद्येते पापापदौ ययोस्तौ अपापापदौ। अमेया अपरिमेया श्री लक्ष्मीः ययोस्तौ अमेयश्रियौ।

अपापापदौ च तावमेयश्रियौ च तौ अपापापदमेयश्रियौ। पादावेव पद्मौ पादपद्मौ। अपापापदमेयश्रियौ तौ पादपद्मौ यस्यासौ अपापापद्मेयश्री-पादपद्मः तस्य सम्बोधनं हे अपापापदमेयश्रीपादपद्म। प्रभो स्वामिन्। अर्दय हिंसय विनाशय। पापं दुष्कृतम्। अप्रतिमा अनुपमा आभा दीप्तिर्यस्यासावप्रतिमाभः अनुपमतेजाः। मे मम। पद्मप्रभ षष्ठ तीर्थंकर। मतिं सद्विज्ञानं प्रददातीति मतिप्रदः तस्य सम्बोधनं हे मतिप्रद। एत-दुक्तं भवति—हे पद्मप्रभ मम पापं अर्दय। अन्यानि सर्वाणि पदानि तस्यैव विशेषणानि ॥ २७ ॥

हे पद्मप्रभ! आपके चरण कमल सदा पापरहित हैं शारी-रिक और मानसिक दुःखोंसे अलग हैं, अपरिमित लक्ष्मीको धारण करनेवाले हैं। हे प्रभो! आप अनुपम तेजको धारण करने वाले हो। सम्यग्ज्ञानको देनेवाले हो। हे प्रभो! यह मेरा भी पाप दूर कर दीजिये ॥ २७ ॥

गतप्रत्यागतपादयमकश्लोकः।

वंदे चारुरुचां देव भो वियाततया विभो।
त्वामजेय यजे मत्वा तमितान्तं ततामित ॥२८॥

वन्दे इति—प्रथमपादस्याक्षरचतुष्टयं क्रमेणालिख्य पठित्वा पुन-रपि तेषां व्युत्क्रमेण पाठः कर्त्तव्यः। क्रमपाठे यान्यक्षराणि विपरीत-पाठेऽपि तान्येव। एवं सर्वे पादा द्रष्टव्याः।

वन्दे नौमि। चार्वी शोभना रुग् दीप्तिर्मेकिर्वा येषां ते चारुरुचः अतस्तेषां चारुरुचाम्। देव भो भट्टारक! वियाततया वियातस्य भावो

वियातता तया वियाततया धृष्टत्वेन। विभो प्रभो। त्वाम्। अजेयः न जीयत इत्यजेयः तस्य सम्बोधनं अजेय। यजे पूजये। मंत्वा विचार्य। तमितः नष्टः अन्तः क्षयो यस्यासौ तमितान्तः तं तमितान्तम्। ततं प्रतिपादितं अमितः अमेयं वस्तु येनासौ तताभितः तस्य सम्बोधनं हे तताभित। एतदुक्तं भवति—भो चारुरुचां देव त्वां वन्दे यजे च वियाततया। अन्यान्यस्यैव विशेषणानि ॥ २८ ॥

हे देव! आप सद्भक्तोंके भी परम देव हो, संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंको निरूपण करनेवाले हो। हे विभो! हे अजेय! मैं आपको अक्षय और अनन्त मानकर बड़ी धृष्टतासे नमस्कार करता हूँ और बड़ी धृष्टतासे ही आपकी पूजा करता हूँ। अर्थात् जब इन्द्र गणधरादिक देव भी आपके योग्य आपकी पूजा नमस्कारादि नहीं कर सकते तब आपके प्रति मेरा पूजन और नमस्कार करना धृष्टताके सिवाय और क्या हो सकता है ॥२८॥

इति पद्मप्रभस्तुतिः।

मुरजः।

स्तुवाने कोपने चैव समानो यन्न पावकः।
भवानैकोपि नेतेव त्वमाश्रेयः सुपार्श्वकः ॥२९॥

स्तुवान इति—स्तुवाने वन्द्यमाने। कोपने क्रोधने कोपं करोतीति कोपनः अतस्तस्मिन्। च समुच्चये। एवावधारणे। समानः सदृशः।

---

१ धृष्टेधिष्णुर्वियातश्च। २ ल्युट् च।

यत्, यस्मात्। न प्रतिषेधे। पुनातीति पावकः पवित्रः। नाग्निः। भवान् भट्टारकः। न प्रतिषेधे। एकोपि प्रधानोपि असहायोपि। नेतेव नायक इव। त्वं युष्मदः प्रयोगः। आश्रेयः आश्रयणीयः। सुपार्श्वकः सप्तमतीर्थंकरस्वामी। किमुक्तं भवति-स्तुतिं करोति यः कोप करोति यः तयोः द्वयोर्न न समानः किन्तु समान एव। ततः त्व सुपार्श्वकः एकोपि सन् पावक इति कृत्वा नेतेव सर्वैरपि आश्रेयः॥ २९॥

हे भगवन्! सुपार्श्वनाथ! चाहे कोई आपकी स्तुति करै चाहे कोई आपपर क्रोध करै आप दोनोंके लिये समान हैं। दोनोंको पवित्र करनेवाले हैं। हे प्रभो यद्यपि आप एक हैं तथापि नायकके समान सबको सेव्य हैं॥ २९॥

इति सुपार्श्वनाथस्तुतिः।
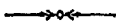
मुरजः।

चन्द्रप्रभो दयोजेयो विचित्रेऽभात् कुमण्डले।
रुन्द्रशोभोक्षयोमेयो रुचिरे भानुमण्डले॥३०॥

चन्द्रप्रभ इति—चन्द्रप्रभः अष्टमतीर्थंकरः। दयते इति दयः रक्षकः। न जीयते इत्यजेयः जितारिचक्र इत्यर्थः। विचित्रे नानाप्रकारे। अभात् शोभितः भा दीप्तौ अस्य धोर्लङन्तस्य रूपम्। कुमण्डले पृथ्वीमण्डले मण्डलमिति वृत्तप्रदेशस्य संज्ञा। रुन्द्रा महती शोभा दीप्ति र्यस्यासौ रुन्द्रशोभः। न क्षीयत इत्यक्षयः।

---

१ पक्षे मुख्यान्यकेवलाः। २ रुन्द्रो विपुलन्।

अमेयः अपरिमेयः । रुचिरे दीप्ते । भानूनां प्रभाणां मण्डलं संघातः भानुमण्डलं तस्मिन् भानुमंडले सति । चन्द्रेण सह श्लेषः । कानिचित्सा-धर्म्येण विशेषणानि कानिचिद्वैधर्म्येण । एतदुक्तं भवति—चन्द्रप्रभस्त्वं कुमण्डले विचित्रे अभात् रुचिरे भानुमंडले सति । अन्यानि चन्द्रप्रभ-भट्टारकस्यैव विशेषणानि । दयः अजेयः चन्द्रशोभः अक्षयः अमेयः चन्द्रप्रभचन्द्रयोः समानत्वं, किन्तु एतावान् विशेषः । स जेयो राहुणा अयमजेयः । स सक्षयः अयमक्षयः । स मेयः अयममेयः । स पृथ्वी-मण्डले अयं पुनस्त्रैलोक्ये अलोके च । अयं व्यतिरेकः ॥ ३० ॥

हे भगवन् ! श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! सूर्यमंडलके देदीप्यमान होते हुये भी आप चन्द्रमाके समान इस विचित्र पृथिवीमंडल पर सुशोभित होते हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि चन्द्रमा केवल पृथिवीमंडलमें सुशोभित होता है आप तीनों लोकोंमें सुशोभित होते हैं । चन्द्रमा सूर्यमंडलके रहते हुये सुशोभित नहीं रह सकता आप सूर्यमंडलके रहते हुये भी सुशोभित रहते हो चन्द्रमाको राहु जीत सकता है आप सर्वथा अजेय हैं । चन्द्रमा-का क्षय होता है आप अक्षय हैं । चन्द्रमा प्रमाणगोचर है आप प्रमाणके अगोचर अप्रमेय हैं । हे भगवन् आपकी शोभा अति विशाल है आप सबके रक्षक और क्रोधादिक अन्तरंग शत्रुओंको जीतनेवाले हैं ॥ ३० ॥

मुरजः ।

प्रकाशयन् खमुद्भूतरत्वमुद्धांक कलालयः ।

विकासयन् समुद्भूतः कुमुदं कमलाप्रियः ॥३१॥

प्रकाशेति—चन्द्रप्रभः अभादिति सम्बन्धः । किं विशिष्टः प्रकाशयन् तिमिरं प्रपाटयन् । खं आकाशं । उद्भूतः उद्गतः । त्वं । उद्धः महान् अंकः चिह्नं यस्यासौ उद्धांकः, कलानां कलागुणविज्ञानानां लेखानां वा आलयः आधारः कलालयः, उद्धांकश्चासौकलालयश्च उद्धांककलालयः। विकासयन् प्रबोधयन् । समुद्भूतः । कुमुदं पृथ्वीहर्षम् । अन्यत्र कुमुदं पुष्पम् । कमलायाः लक्ष्म्याः प्रिय इष्टः । अन्यत्र कमलानां पद्मानां अप्रियः अनिष्टः कमलाप्रियः । एतदुक्तं भवति—त्वं चन्द्रप्रभोऽभात् एतत् कुर्वन् एवं गुणविशिष्टः चन्द्रेण समानः । श्लेषालंकारोऽयम् ॥ ३१ ॥

हे भगवन् चन्द्रप्रभ ! आप सदा चन्द्रमासे भी अधिक सुशोभित हैं । चन्द्रमा केवल अन्धकारको दूर कर सकता है आप अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले हैं । चन्द्रमा आकाशमे केवल रात्रिमे ही उदय होता है आप तीनो लोकोंमें सदा उदयरूप रहते हैं । चन्द्रमाके हरिणका चिह्न है आपके चन्द्रमाका ही चिह्न है । चन्द्रमाकी कलायें केवल किरणें ही है आप गुण विज्ञान आदि नाना कलाओंसे सुशोभित हैं । चन्द्रमा केवल कुमुद अर्थात् कमोदनीको ही प्रकाश करता है । आप कुमुद कहिये सम्पूर्ण पृथ्वीमंडलको प्रकाश करनेवाले हैं । चन्द्रमा कमलोंकेलिये अत्यन्त अनिष्ट है आप कमला कहिये मोक्षरूप लक्ष्मीके अत्यन्त प्रिय हैं । चन्द्रमा अस्त होता है आप सदा उदयरूप रहते हैं ॥ ३१ ॥

मुरजः।

धाम त्विषां तिरोधानविकलो विमलोक्षयः।
त्वमदोषाकरोस्तोनः सकलो विपुलोदयः॥३२॥

धामेति—चन्द्रप्रभोऽभात् अत्रापि सम्बन्धनीयः। धाम अवस्थानम्। त्विषां तेजसाम्। तिरोधानेन व्यवधानेन विकलः विरहितः अन्यत्राविकलः तिरोधानविकलः। विमलो निर्मलः, चन्द्रः पुनः समलः। न क्षीयत इत्यक्षयः, अन्यः सक्षयः। त्व भट्टारकः। अदोषाणां गुणानां आकरः निवासः, अन्यत्र दोषायाः रात्रेः आकरः दोषाकरः। अस्ताः क्षिप्ताः ऊनाः असर्वज्ञतारकाः येनासावस्तोनः। सकलः सम्पूर्णः, अन्योऽसम्पूर्णः। विपुलः महान् उदयः उद्गमो यस्यासौ विपुलोदयः। अन्यः पुनः अविपुलोदयः। किमुक्तं भवति—त्व चन्द्रप्रभः एवंविध गुणविशिष्टः सन् पृथिवीमण्डले अभात् शोभित इति सम्बन्धः॥ ३२॥

हे प्रभो! आप चन्द्रमाके समान ही तेजस्वी हो परन्तु इतना भेद है कि चन्द्रमाके उदय होनेमें तो अंतर रहता है आप व्यवधानरहित निरन्तर उदयरूप रहते हो। चन्द्रमा कलंकी है आप निष्कलंक हो। चन्द्रमाका क्षय होता है आप अक्षय हो। चन्द्रमा दोषाकर अर्थात् रात्रिका उत्पादक है आप गुणाकर अर्थात् अनेक गुणोंके निधि हो। चन्द्रमाके उदय होने से तारे अस्त नहीं होते आपके उदय होनेसे असर्वज्ञरूप तारे सब छिप जाते हैं। चन्द्रमा खण्डशः उदय होता है आप पूर्णरूपसे उदय होते हो। चन्द्रमाका उदय बहुत थोड़े प्रदेशमें है आपका महान् उदय सर्वत्र है। हे देव! हे चन्द्रप्रभ! आप सर्वगुणविशिष्ट सदा शोभायमान रहते हो॥ ३२॥

मुरजः।

यत्तु खेदकरं ध्वान्तं सहस्रगुरपारयन्।
भेत्तुं तदन्तरत्यन्तं सहसे गुरु पारयन् ॥ ३३ ॥

यत्तुखेदेति—यत् यदोरूपम्। तु अप्यर्थे। खेदकरं दुःखकरं खेदं करोतीति खेदकरम्। ध्वान्तं तमः अज्ञानं मोहः। सहस्रगुरादित्यः अपिशब्दोऽत्र सम्बन्धनीयः। सहस्रगुरपि अपारयन् अशक्नुवन्। भेत्तुं विदारयितुम्। तत् ध्वान्तम्। अन्तः अभ्यन्तरम्। अत्यन्तं अत्यर्थम्। अथवा अन्तमतिक्रान्तं अत्यन्तम्। सहसे समर्थो भवसि। भेत्तुं अत्रापि सम्बन्धनीयं काकाक्षिवत्। गुरु महत्। पारयन् शक्नुवन्। त्वं चन्द्रप्रभ इति सम्बन्धनीयम्। किमुक्तं भवति—त्वं चन्द्रप्रभः यदन्तर्ध्वान्तं खेदकरं भेत्तुं सहस्रगुरपि अपारयन् तत् ध्वान्त भेत्तुं सहसे समर्थो भवसि पारयन् सन् ॥ ३३ ॥

हे भगवन्! चन्द्रप्रभ! जिस अत्यन्त दुःख देनेवाले मोहनीयरूप अन्तरंग और गाढ अंधकारको नाश करनेके लिये स्वयं सहस्ररश्मि सूर्य भी असमर्थ है उस अंधकारको आप सहज ही नष्ट कर देते हो ॥ ३३ ॥

मुरजः।

खलोलूकस्य गोव्रातस्तमस्ताप्यति भास्वतः।
कालोविकलगोघातः समयोप्यस्य भास्वतः॥३४॥

खलोलूकेति—त्वं चन्द्रप्रभोऽभूः इति सम्बन्धः। अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवतीति त्वमिति भास्वतः सम्बन्धात् च भवति।

खलश्चासावुलूकश्च खलोलूकः तस्य खलोलूकस्य। गवां रश्मीनां व्रातः संघातः गोव्रातः। तमः अन्धकारः। तापी दहनस्वरूपश्च सम्पद्यत इत्यध्याहार्यः। अति अत्यर्थम्। भास्वतः आदित्यस्य। ते पुनः चन्द्रप्रभस्य भास्वतः प्रकाशयतः गोव्रातः वचनकदम्बकः नापि कस्य-चित्तमो न ताप्यति तापि व्यतिरेकः। कालः समयः मुहूर्तादिः। अवि-कलगः अप्रतिहतः। अन्यत्र विकलगः प्रतिहतः। अघातः प्रतिपक्षरूपै-र्घातो नास्ति। अन्यत्र मेघादिभिरस्त्येव। समयोऽपि दर्शनमपि। अस्य भट्टारकस्य भास्वतः सन्। एवंभूत एव अघातः अविकलगः नान्यत्र। एतदुक्त भवति—भास्वतः गोव्रातः एवंभूतः कालः समयश्च नादित्यस्य। अतस्त्व चन्द्रप्रभः अभूः कुमण्डले इति सम्बन्धः॥ ३४॥

सूर्यकी किरणे दुष्टजन और उलूककेलिये अंधकाररूप परिणत होती हैं तथा संताप करनेवाली होती हैं परन्तु हे चन्द्रप्रभ ! आपके प्रकाशमान होतेहुए आपके वचनसमूह न तो किसीको अंधकाररूप ही परिणत होते हैं और न किसी को सन्ताप देनेवाले होते हैं। सूर्य मेघोंसे छिप सकता है। आप किसी प्रकार नहीं छिप सकते अर्थात् किसी भी प्रतिपक्षी से आपका आघात नही हो सकता। सूर्य रात्रिके अन्तर से उदय होता है आप निरन्तर उदयरूप बने रहते हो। सूर्यका समय अस्थिर है आपका समय अर्थात् दर्शन वा मत सदा स्थिर रहनेवाला है। सूर्यका काल नियमित है आपका काल अनियमित अनन्त है। अतएव हे प्रभो आप इस पृथिवीमंडलपर सूर्यसे भी अधिक सुशोभित होते हो॥३४॥

मुरजः ।

लोकत्रयमहामेयकमलाकरभास्वते ।

एकप्रियसहायाय नम एकस्वभाव ते ॥ ३५ ॥

लोकत्रयेति—लोकत्रयमेव महामेयं वस्तु लोकत्रयमहामेयम्, कमलानां पद्मानां आकरः कमलाकरः नलिनीवनम् । लोकत्रयमहामेयमेव कमलाकरः लोकत्रयमहामेयकमलाकरः तस्य भास्वान् रविः लोकत्रयमहामेयकमलाकरभास्वान् तस्मै लोकत्रयमहामेयकमलाकरभास्वते । एकः प्रधानः । प्रियः इष्टः । सहायः बन्धुः । प्रियश्चासौ सहायश्च प्रियसहायः एकश्चासौ प्रियसहायश्च एकप्रियसहायः तस्मै एकप्रियसहायाय । नमः अव्युत्पन्नो ह्रि संज्ञकः पूजावचनः अस्य योगे अप् । एकस्वभाव एकत्वरूप । ते तुभ्यम् । किमुक्तं भवति—चन्द्रप्रभ इत्यनुवर्त्तते हे चन्द्रप्रभ एकस्वभाव तुभ्यं नमः एवं विशिष्टाय ॥ ३५ ॥

हे सदा- एकरूप ! चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र इस अपरिमित तीनों लोकरूपकमलवनको प्रफुल्लित करनेवाले और सबके प्रधान इष्ट, मुख्यबंधु आपकेलिये नमस्कार हो ॥ ३५ ॥

अर्द्धभ्रमगूढद्वितीयपादः ।

चारुश्रीशुभदौ नौमि रुचा वृद्धौ प्रपावनौ ।

श्रीवृद्धौतौ शिवौ पादौ शुद्धौ तव शशिप्रभ ॥३६॥

चारुश्रीति—यानि द्वितीयपादाक्षराणि तानि सर्वाणि अन्येषु पादेषु सन्तीति ।

श्रीश्च शुभं च श्रीशुभे चारुणी च ते श्रीशुभे च चारुश्रीशुभे ते ययोः इति चारुश्रीशुभदौ । नौमि स्तौमि क्रियापदमेतत् । रुचा दीप्त्या ।

वृद्धौ महान्तौ । प्रपावनौ पवित्रीभूतौ । श्रियं[1] वृणुत इति श्रीवृंतौ[2], श्रीवृतौ च तौ धौतौ च प्रक्षालितौ श्रीवृद्धौतौ[3] । शिवौ शोभनौ । पादौ चरणौ । शुद्धौ शुची । तव ते । हे शशिप्रभ । एतदुक्तं भवति—शशिप्रभ तव पादौ नौमि किं विशिष्टौ तौ एवं गुणविशिष्टौ । अन्यानि सर्वाणि अनयोरेव विशेषणानि ॥ ३६ ॥

हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! आपके चरणकमल सुन्दर समवसरणादिक लक्ष्मीको तथा निःश्रेयसादि कल्याणको देनेवाले हैं । और अत्यंत देदीप्यमान हैं, महापवित्र है, अंतरंग बहिरंग लक्ष्मीकरि शोभायमान हैं, प्रक्षालित हैं, जीवोका कल्याण करनेवाले हैं, अतिशय निर्मल है । हे प्रभो ! आपके ऐसे चरण कमलोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३६ ॥

इति चन्द्रप्रभस्तुतिः ।

निरौष्ठ्यश्लोकयमकः ।

शसनाय कनिष्ठायाश्चेष्टाया यत्र देहिनः ।
नयेनाशंसितं श्रेयः सद्यः सन्नज राजितः ३७

शंसेति—औष्ठ्यमक्षरमत्र श्लोके नास्ति द्विरावर्त्तते च इति हेतोः । शसनाय प्रशंसनायै । कनिष्ठायाः अणुभूतायाः । चेष्टायाः कायवाङ्मनः

---

१ श्रिय वृण्वते इति श्रीवृतः तैर्द्धौतौ प्रक्षालितौ श्रीवृद्धौतौ इति पुस्तकान्तरे पाठः । २ क्विप् प्रत्ययान्तः । ३ क्विबन्तेन सह धौतशब्दस्य समासः ।

क्रियायाः। यत्र यस्मिन् सर्वज्ञविशेषे। देहिनः प्राणिनः सम्बन्धेन। नयेन अभिप्रायेण। आशंसितं सम्भावितं। श्रेयः पुण्यम्, सत् शोभनम्। यः यश्च। द्वितीयार्थे व्याख्यायमाने च शब्दोऽतिरेकः सोऽत्र सम्बन्धनीयः। हे अज सर्वज्ञ। राजितः शोभितः। सन् भवन्। उत्तरार्थे क्रिया तिष्ठति तया सम्बन्धः कर्तव्यः॥ ३७॥

शं स नायक निष्ठायाश्चेष्टायायत्र देहि नः।
न येनाशं सितं श्रेयः सद्यः सन्नजराजितः॥३८॥

शंसनेति—शं सुखम्। स पूर्वोक्तः। नायकः नेता प्रभुर्वा तस्य सम्बोधनं नायक। निष्ठायाः मोक्षावाप्तेः। च अयं चशब्दः पूर्वार्थे दृष्टव्यः। इष्टायाः प्रियायाः। अत्रास्मिन्। देहि दीयताम्। नः अस्मभ्यम्। न। येन। अश दुःखम्। सितं बद्धम्। श्रेयः श्रेयणीयः सन्। सद्यः तत्क्षणादेव। सन्ना विनष्टा जरा वृद्धित्वं यस्यासौ सन्नजरः तस्य सम्बोधनं हे सन्नजर। अन्यैरजितः अजितः सन्। वान्तपदैः सर्वत्र सम्बन्धनीयः। समुदायार्थः—यस्मिन् सर्वज्ञविशेषे प्राणिभिः स्तुतिमात्राद्वा पुण्यत्वभावाद्वा पुण्यं भावितं सत् प्रशस्यं भवति यश्च राजितः। पुष्पदन्त इति उत्तरश्लोके तिष्ठति सोत्र सम्बन्धनीयः। स त्वं श्रेय. सन् हे पुष्पदन्त अज अस्मभ्यं शं देहि, येन सुखेन दुःखं सितं बद्धं न भवति तत्सुखं देहीत्युक्तं भवति॥ ३८॥

हे भगवन् पुष्पदन्त! संसारी प्राणी आपका स्मरण करते हैं स्तोत्र पढ़ते हैं आपको नमस्कार करते हैं, इन छोटी छोटी क्रियाओंसे उन्हें जो पुण्य मिलता है यदि अनुमानसे भी हमको

१ मोक्षाप्तेः।

संभावना की जाय तो भी वह अत्यन्त प्रशंसनीय ठहरता है। हे सर्वज्ञ ! आप अत्यन्त शोभायमान हैं अजेय हैं, जरारहित है, सदा कल्याणरूप हैं सबके इष्टस्वरूप मोक्षके स्वामी हैं। हे प्रभो ! आप उपर्युक्त अनेक गुणविशिष्ट हो, मुझे भी वह सुख दीजिये जिससे फिर कभी दुःख न हो॥ ३७॥ ३८॥

मुरजः।

शोकक्षयकृदव्याधे पुष्पदन्त स्ववत्पते।
लोकत्रयमिदं बोधे गोपदं तव वर्त्तते॥३९॥

शोकेति—शोकक्षयकृत् शोकस्य क्षयः शोकक्षयः तं करोतीति शोकक्षयकृत्। अव्याधे न विद्यते व्याधिर्यस्यासावव्याधिः तस्य सम्बोधन हे अव्याधे। पुष्पदन्त नवमतीर्थंकर। स्ववत्पते आत्मवतां पते। लोकानां त्रयम्। इद प्रत्यक्षवचनम्। बोधे केवलज्ञाने। गोपद गोष्पदम् अत्र सुपो नुत्र् भवति। तव ते। वर्त्तते प्रवर्तते। ज्ञानस्य माहात्म्यं प्रदर्शितम्। गुणव्यावर्णन हि स्तवः। किमुक्तं भवति हे पुष्पदन्त परमेश्वर तव बोधे लोकत्रयं गोष्पद वर्त्तते यतः ततो भवानेव परमात्मा॥ ३९॥

हे भगवन् पुष्पदन्त ! आप शोकसंतापादि सम्पूर्ण दोषों को नाश करनेवाले हैं। आधिव्याधिरहित हैं। हे प्रभो ! आपके केवलज्ञानमें ये सम्पूर्ण तीनों लोक गोपदके समान जान पड़ते हैं। भावार्थ—जैसे गोपद (कीचड़ या धूलमें चिन्हित हुआ गायका खुर) छोटा और प्रत्यक्ष प्रतिभासित होता है उसी प्रकार आपके ज्ञानमें भी ये तीनो लोक अत्यन्त

छोटे और प्रत्यक्ष प्रतिभासित होते हैं । हे भगवन् आपका ज्ञान बहुत बड़ा है इसलिये आप ही परमात्मा हो सक्ते हो ॥ ३९ ॥

मुरजः ।

लोकस्य धीर ते वाढं रुचयेऽपि जुषे मतम् ।
नो कस्मै धीमते लीढं रोचतेऽपि द्विषेमृतम् ॥४०॥

लोकेति—लोकस्य भव्यजीवानां । हे धीर गम्भीर । ते तव । वाढं अत्यर्थम् । रुचये दीतये । अपि मिश्रकने । जुषे च प्रीतये । ताद्र्थ्ये अत्रियम् । मतं प्रवचनम् । नो प्रतिषेधवचनम् । कस्मैचित् जीवाय । धीमते च बुद्धिमते । लीढं आस्वादितम् । रोचते रुचिं करोति । अपि समुच्चयेऽर्थे । द्विषे विद्विषे । अमृतं षोडशभागः । एतदुक्तं भवति—हे पुष्पदन्त धीर ते मतं लीढं लोकस्य रुचये जुषेपि वाढं रोचते । ननु धीमते रोचताम् । यावता हि यो द्वेष्टि तस्य कथं रोचते द्विषेपि अमृतं लीढं धीमते च । न कस्मै रोचते किन्तु रोचत एव ॥ ४० ॥

हे अतिशय गंभीर ! पुष्पदन्त भगवन्[1] ! जो भव्यजीव आपके इस पवित्र आगमका आस्वादन करते हैं उन्हे यह आपका आगम बहुत रोचक प्रिय और सुन्दर जान पड़ता है । चाहे कोई बुद्धिमान हो चाहे आपका विद्वेषी हो, आपका आगम सबको रोचक है । कदाचित कोई यह कहे कि आपका आगम बुद्धिमानोंको रोचक हो तो हो परन्तु जो आपसे द्वेषकरनेवाले हैं

---

१ पक्ष ।

उन्हें यह कब रोचक होसकता है । इसका समाधान यह है कि—जैसे अमृत बुद्धिमान और द्वेष रखनेवाले दोनोको ही रोचक और प्रिय होता है उसीप्रकार आपका आगम भी सबको रोचक और प्रिय लगता है ॥ ४० ॥

इति पुष्पदन्तस्तुतिः ।

मुरजः।

एतच्चित्रं क्षितेरेव घातकोपि प्रपादकः ।
भूतनेत्र पतेस्यैव शीतलोपि च पावकः ॥४१॥

एतदिति—एतत् प्रत्यक्षवचनम् । चित्रं आश्चर्यम् । क्षितेः पृथिव्याः । एव अप्यर्थे । घातकोपि हिंसकोपि । प्रपादकः प्रपालकः भूताना जीवाना नेत्रं चक्षुः भूतनेत्रं तस्य सम्बोधन हे भूतनेत्र । पते स्वामिन् । असि भवसि । एव अत्यर्थं । शीतल भव्याह्लादक दशमतीर्थविधाता । अपि च तथापि पावकः पवित्रः । विरुद्धमेतत् कथ शीतलः शीतलक्रियः पावकः अग्निः । यदि शीतलः कथ पावकः । अथ पावकः कथ शीतलः । यथा यो घातकः कथं प्रपादकः अथ प्रपादकः कथं घातकः । विरुद्धमेतत् । एतदुक्तं भवति हे भूतनेत्रपते क्षितेरेव आश्चर्यमेतत् । यो घातकोपि प्रपादकः । त्वं पुनः शीतलोपि च पावकः भवस्येव ॥४१॥

हेस्वामिन् शीतलनाथ!आप जीवोंके नेत्ररूपहैं जैसे नेत्रोंके द्वार घटपटादिकका ज्ञान होता है उसीप्रकार जीवादिक पदार्थोंका ज्ञान आपके ही द्वारा होता है । हे प्रभो यह बड़ा आश्चर्य है कि आप पृथिवीको घात करनेवाले भी हैं और प्रसन्न करनेवाले

भी हैं तथा शीतल भी हैं और पावक (अग्नि) भी हैं । परन्तु यह बात विरुद्ध है जो शीतल है वह पावक नहीं होसकता। जो पावक है वह शीतल नहीं होसकता । जो घातक है वह प्रसन्नकारक नहीं होसकता । जो प्रसन्न कारक है वह घातक नहींहो सकता । परन्तु आप शीतल अर्थात् भव्यजीवोंको आल्हाद करने वाले भी हैं और पावक अर्थात् पवित्र भी हैं तथा, पृथिवीमंडल को प्रसन्न करनेवाले भी हैं और पृथिवीमंडल अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मसमूहको घात करनेवाले भी हैं ॥ ४१ ॥

मुरजः।

कामभेत्य जगत्सारं जनाः स्नात महोनिधिम् ।
विमलात्यन्तगम्भीरं जिनामृतमहोदधिम् ॥४२॥

कामेति—काममत्यर्थं कमनीयं वा । एत्य गत्वा । जगत्सारं त्रिलोकसारम् । जनाः लोकाः । स्नात अज्ञानमलप्रक्षालनं कुरुध्वम् । महसां तेजसां निधिः अवस्थानं यः सः अतस्तं महोनिधिम् । विमलः निर्मलः अत्यन्तः अपर्यन्तः गम्भीरः अगाधः यः सः विमलात्यन्तगम्भीरः अतस्तं विमलात्यन्तगम्भीरम् । जिन एव अमृतमहोदधिः क्षीरसमुद्रः जिनामृतमहोदधिः अतस्तं जिनामृतमहोदधिम् । एतदुक्तं भवति–यतः एवंभूतः शीतलभट्टारकः ततस्तं शीतलं जिनामृतमहोनिधि विमलं अत्यन्तगम्भीरं हे जिना एत्य गत्वा स्नात कामम् ॥ ४२ ॥

हे श्रीशीतलनाथ भगवन् ! आप क्षीरसमुद्रके समान हैं क्षीरसमुद्र भी जगतका सारभूत है आप भी तीनों जगतोंमें

सारभूत अर्थात् उत्तम हैं । क्षीरसमुद्र निर्मल है आप भी निर्मल अर्थात् क्षुधादिक अठारह दोषोंसे रहित हैं । क्षीरसमुद्र अतिशय गम्भीर है आप भी अतिशय गम्भीर है। अन्तर केवल इतना है कि आप तेजोनिधि भी हैं किंतु क्षीरसमुद्र तेजोनिधि नहीं होसकता । इसलिये भो भव्यजन हो ! श्रीशीतलनाथरूपी अपूर्व क्षीरसमुद्रके समीप जाकर यथेष्ट अज्ञानरूपी मलका प्रक्षालन करो ॥ ४२ ॥

इति शीतलनाथस्तुतिः ।

अर्द्धभ्रमनिरौष्ठ्यगूढचतुर्थपादः ।

हरतीज्याहिता तान्ति रक्षार्थायस्य नेदिता ।
तीर्थादे श्रेयसे नेताज्यायःश्रेयस्ययस्य हि ॥ ४३ ॥

हरतीति—अर्द्धेन भ्रमति यतः औष्ठ्याक्षरमपि न विद्यते सर्वत्र चतुर्थपादाक्षराणि च सर्वेषु पादेषु सन्ति ततो भवत्ययं एवंगुणः ।

हरति विनाशयति । इज्या पूजा । आहिता कृता । तान्ति खेदं क्लेशं दुःखम् । रक्षार्थां पालनार्थां, अयस्य प्रयस्य यत्नं कृत्वा । नेदिता समीपीकृता आन्तिकस्य णिचि कृते नेदादेशस्य रूपमेतत् क्तान्तस्य । शीतलतीर्थविच्छेदे उत्पन्नो यतः ततः तीर्थादिः संजातः तस्य सम्बोधन हे तीर्थादे । श्रेयसे अभ्युदयाय । नेता नायकः । अज्यायः वृद्धत्वहीनः । श्रेयसि एकादशतीर्थंकरे त्वयि । अयस्य पुण्यस्य । हि यस्मात् ।

एतदुक्तं भवति—हे तीर्थदे अज्याय: त्वयि श्रेयसि आहिता इज्या रक्षार्था प्रयत्य पुण्यस्यान्तिका श्रेयोर्थां इह लौकिकार्था तान्ति दुःखं हरति । यतस्ततस्त्वं नेता नायक एव नान्यः । उत्तरश्लोके यानि विशेषणानि तान्यत्रैव दृष्टव्यानि ॥ ४३ ॥

शीतलनाथ तीर्थके विच्छेद होजाने पर होनेवाले हे श्रेयांसनाथ भगवन् ! आप सदा अजर हैं । मन वचन कायसे प्रयत्नपूर्वक की हुई आपकी पूजा संसारके सम्पूर्ण क्लेशोंको दूर करनेवाली है । तथा पुण्यकी रक्षा करनेवाली और कल्याणको देनेवाली है । इसलिये हे प्रभो ! ससारके नायक आप ही होसकते हैं । अन्य कोई नहीं ॥ ४३ ॥

अर्द्धभ्रमः ।

अविवेको न वा जातु विभूषापन्मनोरुजा ।
वेषा मायाज वैनो वा कोपयागश्च जन्म न ४४

अविवेकेति—त्वयि श्रेयसि इत्यनुवर्त्तते । अविवेकः अनालोचनम् । न प्रतिषेधवचनम् । वा समुच्चये । जातु कदाचित् । विभूषा शरीरालंकारः । आपन् विपत् महासंक्लेशः । मनोरुजा चित्तपीडा । वेषा शरीरविन्यासः । माया वंचना । हे अज सर्वज्ञ । वा समुच्चये । एनो वा पापं वा । कोपः क्रोधः हिंसापरिणामः । आगश्च अपराधश्च । जन्म उत्पत्तिः । न प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयः । किमुक्तं भवति—हे श्रेयन् अस्मिन् त्वयि अविवेको न कदाचिदभूत्, विभूषा वा न, आपद्वा न, मनोरुजा वा न, वेषा वा न, माया वा न, हे अज एनो वा न, कोपः

आगश्च जन्म च न, यतः ततो भवानेव नेतेति सम्बन्धः । अविवेको नास्तीति वचनेन सांख्यसौगतयोगानां निराकरणं कृतम् । अन्यैर्विशेषणैरन्ये निराकृताः ॥ ४४ ॥

हे श्रेयांसनाथ सर्वज्ञ ! आपमें कभी अविवेक नहीं था । शरीरमे कोई अलंकार भी नहीं था । तथा आपत्ति, चित्तकी पीड़ा, शरीरका विन्यास, माया, पाप, क्रोध, अपराध, जन्म मरण आदि कभी नहीं थे । हे प्रभो ! इसकारण ही आप सबके स्वामी हो

इस श्लोकमें श्रीश्रेयांसनाथभगवानके जो विशेषण दिये हैं उन सबसे अन्यमतोका निराकरण होता है । यथा-सांख्य बौद्ध नैयायिक लोग ईश्वरको ज्ञानस्वरूप नही मानते, किन्तु ज्ञानका अधिकरण मानते हैं । इसका निराकरण " आप कभी अविवेकी नहीं थे " इस विशेषणसे होता है । इसीप्रकार अन्य विशेषणोसे भी और और मतोका निराकरण समझ लेना चाहिये ॥ ४४ ॥

सुरजः ।

आलोक्य चारु लावण्यं पदाल्लातुमिवोर्जितम् ।
त्रिलोकी चाखिला पुण्यं मुदा दातुं ध्रुवोदितम् ॥ ४५ ॥

आलोक्येति—आलोक्य दृष्ट्वा । चारु शोभनम् । लावण्य सारूप्य सौभाग्यम् । पदात् पादात् । लातुं ग्रहीतुम् । इव औपम्ये । ऊर्जितं महत् । त्रयाणा लोकानां समाहारः त्रिलोकी । च अत्यर्थे ।

अखिला निरवशेषा। पुण्यं शुभम्। मुदा हर्षेण। दातुं दत्तुम्। ध्रुवोदितं नित्योद्गतम्। श्रेयसीत्यनुवर्त्तते। किमुक्तं भवति—यस्य श्रेयसो भट्टारकस्य पादात् त्रिलोकी अखिला आलोक्य लावण्यं किं विशिष्टं पुण्यं दातुं ध्रुवोदितामिवोर्जितं लातुमिव ननाम इति सम्बन्धः। भट्टारकस्त्वं मा अव इत्युत्तरसम्बन्धः॥ ४५॥

हे श्रेयांसनाथ भगवन्! आपके चरणकमलोंका सुन्दर लावण्य हर्षपूर्वक पुण्यप्रदान करनेकेलिये ही मानो सदा प्रकाशमान है तथा अतिशय विस्तृत है। हे प्रभो! त्रिभुवनके समस्त जीव आपके चरणकमलोंका ऐसा सुन्दर लावण्य देखकर उसे ग्रहण करनेकेलिये ही मानों नमस्कार करते हैं। इसलिये हे प्रभो! मेरी भी आप रक्षा कीजिये॥ ४५॥

श्लोकयमकः।

अपराग समाश्रेयन्ननाम यमितोभियम्।
विदार्य सहितावार्य समुत्सन्नज वाजितः॥४६॥

अपेति—अपराग वीतराग। समाश्रेयं सम्यगाश्रेयम्। ननाम नौतिस्म। त्रिलोकी इति सम्बन्धः। यं भट्टारकं। इत: प्राप्तः। भियं भीतिम्। विदार्य प्रभिद्य। सह हितेन वर्त्तन्ते इति सहिता. तैरावार्यः परिवेष्टितः सहितावार्यः तस्य संबोधनं हे सहितावार्य। सम्यक् मुत् हर्षः यस्यासौ समुत्। सन् भवन्। हे अज सर्ववित्। वाजितः कटकितः। किमुक्तं भवति—यस्य पादात् त्रिलोकी लावण्यं लातुमिव यं ननाम। न या भव्यजनः इतः भयं विदार्य सहर्षः सन् वाजितः कण्टकितः पुलकितशरीरो भवति स त्वं मा अव इत्युत्तरत्र सम्बन्धः॥ ४६॥

हे सर्वज्ञ ! वीतराग ! सबका हित करने वाले श्रेयांसनाथ भगवन् ! आप सबके प्रधान आश्रय हो । यह समस्त जगत आपके चरण कमलोंसे सुन्दर लावण्य लेनेकेलिये ही आपको नमस्कार करता है अथवा ये भव्यजन आपको पाकर ही निर्भय होजाते हैं । तथा अतिशय हर्षित होकर रोमांचित होजाते हैं । अतएव हे प्रभो ! मेरी भी रक्षा कीजिये ॥ ४६ ॥

अपराग स मा श्रेयन्ननामयमितोभियम् ।
विदार्यसहितावार्य समुत्सन्नजवाजितः ॥४७॥

अपरागेति—परागः संपरायः । न विद्यते परागो यस्यासावपरागः तस्य संबोधनं हे अपराग । स त्वं । मा अस्मान् । हे श्रेयन् एकादशतीर्थकर । आमयः व्याधिः, न विद्यते आमयो यस्यासावनामयः तं अनामय, मा इति सम्बन्धः । इतः इतः प्रभृति । अभियं अभयम् । विद् ज्ञानम्, आर्य्याः साधवः; तैः सहितः युक्तः विदार्यसहितः तस्य सम्बोधनं हे विदार्यसहित । अव रक्ष । आर्य पूज्य । समुत्सन्नजव । आजितः सग्रामात् कलहात् प्रणयसंग्रामाद्वा । किमुक्तं भवति—स एवं विशिष्टः त्वं हे श्रेयन् इतःप्रभृति अनामयं अभियं मा रक्ष आजितः समुत्सन्नजव अपराग ॥ ४७ ॥

हे भगवन् ! श्रेयांसनाथ ! आप वीतराग हैं । सर्वज्ञ हैं । अनेक मुनिजन सदा आपकी सेवामें उपस्थित रहते हैं । आप सबके पूज्य हैं । आपका वेग रागद्वेषके घोर संग्रामसे बहुत दूर है अर्थात् आप सदा रागद्वेषरहित हैं । हे प्रभो ! मैं आपके दर्शन करने मात्रसे ही निर्भय होगया हूं । मेरी अनेक व्याधियां जाती रहीं हैं । हे देव ! अब मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४७ ॥

इति श्रेयःस्तुतिः ।

अनन्तरपादमुरजबन्धः।

अभिषिक्तः सुरैर्लोकैस्त्रिभिर्भक्तः परैर्न कैः।
वासुपूज्य मयीशेशस्त्वं सुपूज्यः क ईदृशः॥४८॥

अभीति—प्रथमद्वितीययोस्तृतीयचतुर्थयोः पादयोः मुरजबन्धो दृष्टव्यः।

अभिषिक्तः मेरुमस्तके स्नापितः। सुरैः देवैः। लोकैस्त्रिभिः भवनवासिमनुष्यदेवेन्द्रैः। भक्तः सेवितः। परैरन्यैः कैर्न सेवितः किन्तु सेवित एव। हे वासुपूज्य द्वादशतीर्थंकर। मयि विषये मम वा। ईशानामीशः ईशेशः त्वं। सुष्ठु पूज्यः सुपूज्यः। क ईदृशः युष्मत्समानः अन्यः क इत्यर्थः। एतदुक्तं भवति—हे वासुपूज्य यः लोकैः त्रिभिः अभिषिक्तः भक्तश्च सः अन्यैः कैर्न भक्तः सेवितश्च ततो मयि मम त्वमेव ईशेशः अन्यः ईदृशः सुपूज्यः कः यः अस्माकं स्वामी भवेत्॥ ४८॥

हे भगवन्! वासुपूज्य! वैमानिक देवोंने तथा भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क मनुष्य तिर्यञ्च आदि तीनों लोकोंने आपको सुमेरु पर्वतके मस्तकपर ले जाकर आपका अभिषेक किया, आपकी सेवा की। हे प्रभो! फिर ऐसा कौन है जो आपकी सेवा न करे अर्थात् सभी आपकी सेवा करते हैं। अतएव मेरेलिये आपही ईश्वरोंके ईश्वर हैं आप ही सुपूज्य हैं। आपके समान अन्य कौन है जो मेरा स्वामी हो सके॥ ४८॥

मुरजः ।

चार्वस्यैव क्रमेजस्य तुंगः सायो नमन्नभात् ।
सर्वतो वक्त्रमेकास्यमंगं छायोनमप्यभात् ॥४९॥

चार्वेति—चारु शोभनम् । अस्यैव क्रमे पादे । अजस्य सर्वज्ञस्य। तुंगः महान् । सायः सपुण्यः । नमन् स्तुतिं कुर्वन् । अभात् शोभते स्म । विरुद्धमतत् । नमन् सन् कथं तुंगः । अस्य पुनरजस्य नमन्नपि तुंगः । अतः एवकारः अत्रैव । सर्वतः समततः । वक्त्रं मुखं । एकमास्यं यस्याङ्गस्य तदेकास्यं एकमुखम् । अङ्गं शरीरम् । छायया ऊनं छायोनं छायारहितम् । अछायत्वं ज्ञापितं भवति । छायोनमपि अभात् शोभतेस्म । विरुद्धमेतत्—एकास्यमंगमपि सर्वतो वक्त्रं यद्येकास्यं कथं सर्वतो वक्त्रं, अथ सर्वतो वक्त्रं कथमेकास्यम् । एतदपि विरुद्धम्—यदि छायोनं कथमभात्, अथाभात् कथं छायोनम् । अन्यत्र विरुद्धं अस्य पुनः सर्वज्ञस्य न विरुद्धम् । घटत एव सर्वं यतश्च विरुद्धालंकृतिरियम् । किमुक्तं भवति-अनेन व्याजेन माहात्म्यं प्रदर्श्यास्य स्तवनं कृतं भवति ॥४९ ॥

हे भगवन् ! हे सर्वज्ञ ! आपके चरणकमलोंको जो नमस्कार करता है वह अतिशय पुण्यवान् उच्च और सुशोभित होजाता है, यद्यपि यह बात परस्पर विरुद्ध है जो नमस्कार करता है वह उच्च नहीं हो सकता और जो उच्च है वह नम्रीभूत नहीं हो सकता परन्तु आपमें दोनों ही बातें संघटित होती हैं जो आपके चरण कमलोंमें नम्रीभूत होता है वह अवश्य ही उच्चपदवीको प्राप्त होता है । हे प्रभो ! यद्यपि आपके शरीरमें एक ही मुख है तथापि वह चारों ओरसे दिखता है । यद्यपि आपका शरीर

छायारहित है तथापि वह अतिशय सुशोभित होता है। ये दोनों बातें भी परस्पर विरुद्ध है। एक मुख चारों ओरसे नहीं दिख सकता और चारोंओरसे दिखनेवाला मुख एक नहीं हो सकता। जो शरीर छायारहित है वह सुशोभित नहीं हो सकता, जो सुशोभित होता है वह छायारहित नहीं हो सकता परन्तु हे प्रभो वासुपूज्य! आपमें ये सब विरुद्ध विषय भी संघटित होते हैं॥ ४९॥

इति वासुपूज्यस्तुतिः।

इष्टपादमुरजबन्धः।

क्रमतामक्रमं क्षेमं धीमतामर्च्यमश्रमम्।
श्रीमद्विमलमर्चेमं वामकामं नम क्षमम्॥५०॥

क्रमेति—क्रमतां अप्रतिबन्धेन व्रजतु। व्रजतां वा। अक्रमं युगपत्। क्षेमं कुशलं सुखम्। धीमतां बुद्धिमताम्। कर्त्तरि ता। अर्च्यं पूज्यम्। अश्रमं श्रमरहितं अक्लेशम्। श्रीमांश्चासौ विमलश्च श्रीमद्विमलः अतस्तं श्रीमद्विमलं परमतीर्थंकरं त्रयोदशम्। अर्च क्रियापदं लोडन्तम्। इमं प्रत्यक्षवचनम्। वामैः प्रधानैः काम्यते इष्यते इति वामकामः अतस्तं वामकामम्। नम च चशब्दोऽनुक्तो दृष्टव्यः। क्षमं समर्थं क्रोधादिरहितमित्यर्थः। एतदुक्तं भवति—श्रीमद्विमलं सर्वविशेषणविशिष्टं अर्च नम च धीमतामर्च्यं क्षेमं क्रमतां अक्रमं सर्वेषां प्रणामादेव शान्तिर्भवति॥ ५०॥

हे भव्यजनो इन्द्र चक्रवर्ति आदि प्रधान पुरुष भी जिनकी सेवा करनेकी सदा इच्छा रखते हैं, जो क्रोधादिरहित हैं, अतिशय शोभायमान हैं ऐसे इन विमलनाथ स्वामीको पूजो

नमस्कार करो। इनको नमस्कार करने और पूजनेसे परिश्रम रहित उसी क्षणमे ऐसा मोक्षरूप सुख मिलता है कि जिसको बुद्धिमान भी पूज्य समझते हैं ॥ ५० ॥

द्व्यक्षरपादाभ्यासयमकः।

ततोमृतिमतामीमं तमितामतिमुत्तमः ।
मतोमातातिता तोत्तुं तमितामातिमुत्तमः ॥५१॥

ततोमृतीति—द्वितीयपादोभ्यस्तः पुनरुक्तः तकारमकारयोरेवास्तित्वं नान्येषाम्। यतस्ततो भवत्यय द्व्यक्षरपादाभ्यासयमकः।

विमल इत्यनुवर्त्तते। ततस्तस्मादहं विमलं अमृतिं मरणवर्जितम्। अतामि सतत गच्छामि । इमं प्रत्यक्षवचनम् । तमिता विनाशिता अमतिः अज्ञान येनासौ तमितामतिः तं तमितामतिम्। उत्तमः प्रधानः यतस्त्वमिति सर्वत्र सम्बन्धः। मतः पूजितः । अमाता अहिंसकः। अतिता सततगतिरहमिति सम्बन्धः।. तोत्तुं प्रेरितुम्। तमितां अक्षमस्वरूपम्। अति पूज्या मुत् हर्षः यस्यासौ अतिमुत्, सर्वे इमे अतिमुदः, एतेषां मध्ये अयमतिशयेन अतिमुत् अतिमुत्तमः। किमुक्तं भवति—यतो भवतः प्रणामादक्रम क्षेम क्रमते स्तोतृणाम् ततोऽहमुत्तमः सन् अतिमुत्तमः सन् मतः अमाता अतिताह तोत्तु तमिता क्लेशितुं अतामि विमलं अमृतिम् ॥ ५१ ॥

हे विमलनाथ आप जन्ममरणरहित हैं, आपने समस्त अज्ञानको दूरकर केवलज्ञान प्राप्त किया है, आप सर्वोत्तम और सर्वपूजित हैं। अहिंसक अर्थात् अहिंसाके प्रतिपादन करनेवाले हैं और मैं चतुर्गतियोंमे निरंतर परिभ्रमण करने

वाला हूं। हे प्रभो ! आपको प्रणाममात्र करनेसे तत्क्षणमें ही कल्याण होता है इसलिये मैं भी अत्यन्त हर्षित होकर आपकी शरण लेता हूं॥ ५१॥

अक्षरद्वयविरचितसमुद्गयमकः।

नेतानतनुतेनेनोनितान्तं नाततो नुतात्।
नेता न तनुते नेनो नितान्तं ना ततो नुतात्॥५२॥

नेतेति—यादृग्भूतं पूर्वार्द्धं पश्चार्द्धमपि तादृग्भूतमेव। तकारनकारयोरेवास्तित्वं नान्येषाम्। अतः एवम्भूतः।

न प्रतिषेधः। इतान् प्राप्तान्। अतनुते अशरीरित्वे स्ततं नस्य (?) विकल्पेन आडागमः। न विद्यते एनः पापं यस्यासौ अनेनाः तस्य सम्बोधनं हे अनेनः। अनितान्तं क्लेशरहितं यथा भवति। न अततः न सदा गच्छतः पूर्वोपि न शब्दः अत्रैवाभिसम्बन्धनीयः तेन किमुक्तं भवति—न न अततः अतत एव। द्वौ प्रतिषेधौ प्रकृतमर्थं गमयतः। नुतात् प्रणतात्। नेता नायकः। न तनुते महान् न भवते, न अत्रापि पूर्ववत् सम्बन्धः। न न तनुते किन्तु तनुत एव। इनः स्वामी सन्। नितान्तं अत्यर्थं। ना पुरुषः। ततः तस्मात्। नुतात् नुवात्। तातङन्तं क्रियापदम्। किमुक्तं भवति—इतान् प्राप्तान् न न, अततः -प्राणिनः अतनुते अशरीरित्वे सिद्धत्वे तनुते विस्तारयति नायकः स्वामी नः प्रणामादेतोः। अतः त ना नुतात्॥ ५२॥

हे प्रभो ! विमलनाथ ! आप पापरहित हैं, आपको जो नमस्कार करता है वह सबका स्वामी और नायक हो जाता है। हे प्रभो इस पंचपरावर्तनरूप संसारमें निरंतर परिभ्रम-

करनेवाले जो जीव आपकी शरण लेते हैं वे विना किसी क्लेश के सिद्धत्वपर्यायको अवश्य प्राप्त होते हैं । इसलिये भो भव्यजन ! ऐसे इन विमलनाथ स्वामीको तुम भी नमस्कार करो ॥ ५२ ॥

चक्रश्लोकः ।

नयमानक्षमामान न माभार्यार्त्तिनाशन ।
नशनादस्य नो येन नये नोरोरिमाय न ॥५३॥

नयमेति—नयमानक्षम पूज्यमानक्षम नयमाना क्षमा यस्यासौ नयमानक्षमः तस्य सम्बोधन हे नयमानक्षम । न विद्यते मानं उद्धतिः परिमाण वा यस्यासावमानः तस्य सम्बोधन हे अमान । न प्रतिषेधवचनम् मा अस्मदः इवन्तस्य रूपम् । आर्याणा साधूनां अर्त्तिः पीडा ता नाशयती त्यार्यार्त्तिनाशनः कर्तरि युट् बहुलवचनात् । ततः हे आर्यार्त्तिनाशन । नशनात् विनाशात् जातिजरामरणेभ्यः इत्यर्थः । अस्य उत्सारय । असु क्षेपणे इत्यस्य धोः लोडन्तस्य रूपम् । नो प्रतिषेधः । येन कारणेन नये पूजामह लभे संमाननेय विधि । न नो प्रतिषेधवचने अत्र सम्बन्धनीये । न नो नये किन्तु नये एव । द्वौ प्रतिषेधौ प्रकृतमर्थं गमयतः । न प्रतिषेधे । हे उरो महन् । अरिमाय अरिहिंसक । अरीन् अन्तःशत्रून् मिनाति हन्तीति अरिमायः ततः हे अरिमाय । पूर्वोक्तोपि न अत्र सम्बन्धनीयः । हे न न अरिमाय । किमुक्त भवति हे नयमानक्षम अमान आर्य्यार्तिनाशन न न अरिमाय मा विनाशात् अस्य अपनय । येन न नो नये अहं । येन पूजामह लभे इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

हे भगवन् विमलनाथ ! आपकी क्षमा सर्वपूज्य है । आप अहंकाररहित हैं । सज्जनोंके दुखोंको दूर करनेवाले हैं ।

क्रोधादि अंतरंग शत्रुओंको नाश करनेवाले हैं, पूज्य हैं। हे प्रभो ! जन्मजरामरणसे मेरी रक्षा कीजिये जिससे कि मैं भी उत्तम पूज्यस्थानको प्राप्त हो जाऊं ॥ ५३ ॥

इति विमलनाथस्तुतिः ।
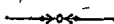
गूढस्वेष्टपादचक्रश्लोकः ।

वर्णभार्यातिनन्द्याव वन्द्यानन्त सदारव ।
वरदातिनतार्य्याव वर्य्यातान्तसभार्णव ॥ ५४ ॥

वर्णेति--आत्मनः इष्टपादः सोन्येषु पादेषु गुप्यते यतः । वर्णेन शरीरप्रभया भाति शोभते इति वर्णभः शरीरकान्त्युत्कट इत्यर्थः तस्य सम्बोधनं हे वर्णभ । आर्य्य पूज्य ' अतिनन्द्य सुष्ठुसमृद्ध । अव रक्ष । लोडन्तस्य रूपं क्रियापदम् । वन्द्य देवासुरैरभिवन्द्य । हे अनन्त चतुर्दशतीर्थंकर । सन् शोभनः आरवः वाणी सर्वभाषात्मिका यस्यासौ सदारवः तस्य सम्बोधनं हे सदारव । वरद इष्टद कामदायक । अति शोभनं नताः प्रणताः अतिनताः अतिनताश्च ते आर्याश्च अतिनतार्य्याः तान् अवति रक्षतीति अतिनतार्यावः तस्य सम्बोधनं हे अतिनतार्याव । वर्य्य प्रधान । सभा एव अर्णवः समुद्रः सभार्णवः अतान्तः अखिन्नः अक्षुभितः सभार्णवः समवसृतिसमुद्रः यस्यासौ अतान्तसभार्णवः तस्य सम्बोधनं हे अतान्तसभार्णव । किमुक्तं भवति हे अनन्त वर्णभादि विशेषणविशिष्ट अव पालय मामिति सम्बन्धः । अन्यांश्च पालय ॥५४॥

हे पूज्य ! अनन्तनाथ ! आपके शरीरकी शोभा अतिशय सुन्दर है । आपका वैभव भी सर्वोत्तम है । सर्वभाषा-

स्वरूप आपकी वाणी भी अति प्रशंसनीय है । आपका समवसरणरूप समुद्र भी क्षोभरहित है । जो सज्जन आपको नमस्कार करते हैं आप उनकी अवश्य रक्षा करते है । हे प्रभो आप इन्द्रादिक देवोंसे भी पूज्य हैं, कामदायक हैं, श्रेष्ठ हैं अतएव हे देव आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५४ ॥

गूढद्वितियतृतीयान्यतरपादद्व्यक्षरमयश्लोकः ।

नुन्नानृतोन्नतानन्त नूतानीतिनुताननः ।
नतोनूनोनितान्तं ते नेतातान्ते निनौति ना॥५५॥

नुन्नेति—द्वितीयतृतीयान्यन्तरपादोगुप्यते नकारतकारयोरेवास्तित्व नान्येषा यतः ।

नुन्नं क्षिप्त अनृत असत्य येनासौ नुन्नानृतः तस्य सम्बोधनं हे नुन्नानृत अनेकान्तवादिन् । उन्नत महन् । अनन्यसम्भूतैर्गुणैर्यदि भट्टारकस्य उन्नतत्व न भवति कस्यान्यस्य भविष्यति । अनन्त अपरिमाण भट्टारकस्य नाम वा । नूताः स्तुताः अनीतयः सिद्धा यैस्ते नूतानीतयः तैर्नुतं स्तुतं पूजितं आननं मुखं यस्य स्तोतुः असौ नूतानीतिनुताननः स्तुतिकर्त्ता पुरुषः । नत. प्रणतः अनूनः अविकलः सम्पूर्णः । अनितान्त क्लेशरहित, क्लेशरहितं यथा भवति क्रियाविशेषणमेतत् । ते त्वा तुभ्यं वा । नेता नायकः इन्द्रादिः । अतान्ते अतान्तनिमित्तम् । मोक्षनिमित्तमित्यर्थः । निनौति प्रणौति । ना पुरुषः चक्रधरादिः । किमुक्त भवति । हे अनन्त नुन्नानृत उन्नत नेता निनौति नेता नायकोपि सन् । विरुद्धमेतत् । यदि नायकः कथमन्यस्य प्रणाम करोति अथ प्रणाम करोति कथ नायकः । त्वा पुनः नौति नायकोपि मोक्षनिमित्तं ततस्त्वमेव नायक. ॥५५॥

हे देव अनन्तनाथ ! आप समस्त असत्यरूप एकान्तवाद

को छिपाकर सर्वथा सत्यस्वरूप अनेकान्तवादको प्रकाश करनेवाले हैं तथा सबसे अधिक उन्नत अर्थात् बड़े हैं। हे प्रभो! सिद्धोंकी स्तुति करनेसे जिनके मुख पूज्य गिने जाते हैं और जो आपके चरणकमलोंमें सदा नम्रीभूत रहा करते हैं ऐसे इन्द्र चक्रवर्ती आदि सम्पूर्ण मुख्य मुख्य नायक पुरुष भी मोक्षकेलिये विना किसी आपत्तिके आपको नमस्कार करते हैं। यद्यपि यह बात परस्पर विरुद्ध है जो नायक है वह अन्य किसीको क्यों प्रणाम करेगा और जो प्रणाम करेगा वह नायक कैसे हो सकेगा? परन्तु हे भगवन् आपको सब नमस्कार करते हैं इसलिये आप ही नायक हो सकते हो अन्य कोई नहीं ॥ ५५ ॥

इति अनन्तनाथस्तुतिः ।

गूढद्वितीयचतुर्थान्यतरपादोऽर्द्धभ्रमः ।

त्वमबाध दमेनर्द्ध मत धर्मप्र गोधन ।
बाधस्वाशमनागो मे धर्म शर्मतमप्रद ॥५६॥

त्वमेति— त्वं युष्मदो रूपम् । न विद्यते बाधा यस्यासावबाधः तस्य सम्बोधनं हे अबाध । दमेन उत्तमक्षमया ऋद्ध वृद्ध । मत पूजित । धर्मप्र उत्तम क्षमादिना आप्यायकपूरण । गोधन गौर्वाणी धनं यस्यासौ गोधनः तस्य सम्बोधनं हे गोधन । बाधस्व विनाशय । अशं दुःखम् । अनागः निर्दोष । मे मम । धर्म पञ्चदशतीर्थंकर । शर्म सुखम् । सर्वाणि इमानि शर्माणि एतेषां मध्ये अतिशयेन इमानि शर्माणि शर्मतमानि तानि प्रददाति यः सः शर्मतमप्रदः तस्य सम्बोधनं हे शर्मतमप्रद ।

एतदुक्त भवति– हे धर्म अवाध दमेनर्द्ध मत धर्मप्र गोधन अनागः शर्मतमप्रद त्व मे अश वाधस्व ॥ ५६ ॥

हे धर्मनाथ भगवन् ! आप बाधारहित हो, उत्तम क्षमा के होनेसे वृद्ध गिने जाते हो, सबके पूज्य हो, उत्तमक्षमादिक दशप्रकारके धर्मको धारण करनेवाले हो, निर्दोष हो, मोक्ष रूप अतिशय उत्तम सुखको देनेवाले और दिव्यध्वनिरूप वाणीके स्वामी हो। हे प्रभो मेरा दुःख दूर कर दीजिये ॥५६॥

गतप्रत्यागतैकश्लोकः ।

नतपाल महाराज गीत्यानुत समाक्षर ।
रक्ष मामतनुत्यागी जराहा मलपातन ॥ ५७ ॥

नतेति—क्रमपाठे यान्यक्षराणि विपरीत पाठेपि तान्येव । नतान् प्रणतान् पालयति रक्षतीति नतपाल. तस्य सम्बोधन हे नतपाल । महान्तो राजानो यस्य स महाराज· 'ट· सान्त.' तस्य सम्बोधन महाराज ! अथवा नतपाला महाराजा यस्यासौ नतपालमहाराजः तस्य सम्बोधन नतपालमहराज । मम गीत्यानुत अस्मत्स्तवनेन पूजित । अक्षर अनश्वर । रक्ष पालय । मा अस्मदः इवन्तस्य रूपम् । अतनुत्यागी अनल्पदाता । जराहा वृद्धत्वहीनः । उपलक्षणमेतत् जातिजरामरणहीन इत्यर्थः । मल पाप अज्ञान पातयति नाशयतीति मलपातनः कर्तरि युट् बहुलवचनात् । तस्य सम्बोधन हे मलपातन । एतदुक्त भवति—हे धर्म नतपाल महाराज गीत्यानुत मम अक्षर जराहा मलपातन रक्ष मा अतनुत्यागी यतस्त्वम् ॥ ५७ ॥

---

१ जनेद्रव्याकरणस्य ।

हे प्रभो धर्मनाथ ! जो आपके प्रति नम्रीभूत होते हैं उनके आप रक्षक हैं, अनेक राजा महाराजा आपकी सेवा करते हैं। आप अविनश्वर हैं, जन्ममरणजरारहित हैं, और अज्ञानरूपी पापको नाश करनेवाले हैं। हे प्रभो ! आप मेरे स्तोत्रोंसे पूजित हुये हो और अनन्त विभूतिके देनेवाले हो इसलिये मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५७ ॥

मुरजः ।

मानसादर्शसंक्रान्तं सेवे ते रूपमद्भुतम् ।
जिनस्योदयि सत्त्वान्तं स्तुवे चारूढमच्युतम्॥५८॥

मानसेति—मनः एव मानसं चित्तमित्यर्थः मानसमेवादर्शः दर्पणः मानसादर्शः मानसादर्शे संक्रान्तं प्रतिबिम्बितं मानसादर्शसंक्रान्तम् । सेवे भजामि । ते तव । रूपं शरीरकान्तिम् । अद्भुतं आश्चर्यभूतम् । जिनस्य त्रैलोक्यनाथस्य । उदयि उदयान्वितम् । सतः शोभनस्य भावः सत्वं, सत्त्वस्यान्तं अवसानं परमकाष्ठा सत्त्वान्तम् । स्तुवे वन्दे । च समुच्चये । आरूढं अध्यारूढं, अच्युतं अहीनं अक्षरम् । च समुच्चयार्थः । जिनस्य रूपं सेवेऽहं स्तुवे च किंविशिष्टं रूपं मानसादर्शसंक्रान्तम् । पुनरपि किंविशिष्टं अद्भुतं उदयि सत्त्वान्तमारूढं अच्युतमिति परमभाक्तिकस्य वचनम् ॥ ५८ ॥

हे देवाधिदेव ! त्रैलोक्यनाथ ! आपके शरीरकी कान्ति बड़ी ही आश्चर्यजनक है, शोभाकी तो पराकाष्ठा है विनाश रहित है (उसमें कोई किसी तरहकी कमी नहीं है) सदा उदयरूप तथा वृद्धिरूप है और मेरे चित्तरूपी दर्पणमें

प्रतिबिम्बित हो रही है। हे प्रभो! मैं नानाप्रकारसे उसकी सेवा करता हूं और स्तुति करता हूं॥ ५८॥

मुरजः।

यतः कोपि गुणानुक्त्या नावाब्धीनपि पारयेत्।
न तथापि क्षणाद्भक्त्या तवात्मानं तु पावयेत् ५९

यतः इति— यतः यस्मात्। कोपि कश्चिदपि। गुणान् जिनस्यासाधारणधर्मान्। उक्त्या वचनेन। नावा पोतेन। अब्धीन् समुद्रान्। अपि संभावने। पारयेत् प्लवताम्। न प्रतिषेधे। तथापि एवमपि। क्षणात् अक्षिसंकोचात् समयाद्वा। भक्त्या सेवया। तव ते। आत्मान स्वम्। तु पुन.। पावयेत् पवित्रीकुर्यात्। समुदायार्थ.-यतो निश्चितं चेतो मम नावाब्धीनपि पारयेत् तव गुणाननन्तान् कश्चिदपि न पारयेत् यद्यपि तथापि क्षणात् भक्त्या तवात्मान तु पावयेत्। कुतएतत् स्तुतिमाहात्म्यात्॥ ५९॥

हे धर्मनाथ भगवन् मेरे हृदयमे पूर्ण विश्वास है कि यदि कोई चाहै तौ नावोकेद्वारा समुद्रके पार हो सकता है परन्तु कोई भी पुरुष बचनोंकेद्वारा आपके अनन्त गुणरूप समुद्रको पार नहीं पा सकता। यह वात निश्चित है तथापि हर कोई पुरुष आपकी भक्तिकेद्वारा अपने आत्माको क्षणभर मे पवित्र कर सकता है। हे प्रभो आपकी स्तुतिका महात्म्य ही ऐसा है॥ ५९॥

मुरजः।

रुचं बिभर्ति ना धीरं नाथातिस्पष्टवेदनः।
वचस्ते भजनात्सारं यथायःस्पर्शवेदिनः॥ ६०॥

रुचमिति—रुच दीप्तिं तेजः। बिभर्ति धरते। ना पुरुषः। धीरं गभीरं सावष्टम्भं यथा भवति क्रियाविशेषणमेतत्। हे नाथ स्वामिन्। अतिस्पष्टवेदनः अतिस्पष्टं विशद वेदनं विज्ञानं यस्यासावतिस्पष्टवेदनः। वचः वचनम्। ते तव। भजनात् सेवनात्। सार परमतत्त्वभूतम्। यथा इवार्थे। अयो लोहम्। स्पर्शवेदिनः। सुवर्णभावकारिणः स्पर्शपाषाणस्य भजनात् सेवनात्। अस्य समुदायार्थः कथ्यते-हे नाथ ना रुच बिभर्ति ते भजनात् वचश्च सार धीर यथाभवति किं विशिष्टः सन्ना अतिस्पष्टवेदन-। कथं? दृष्टान्त प्रदर्शयति यथा अयः स्पर्शवेदिनः॥ ६०॥

हे स्वामिन् जैसे पारस नामक पाषाणके स्पर्श करनेमात्र से लोहा सुवर्ण हो जाता है और तेजको धारण करने लगता है उसीप्रकार आपकी सेवा करनेसे यह पुरुष भी अतिशय प्रत्यक्षरूप केवलज्ञानको प्राप्त करता हुआ परम तेजस्वी हो जाता है। और इसके वचन भी संसारमें सारभूत अर्थात् परम उत्कृष्ट और अतिशय गंभीर हो जाते हैं॥ ६०॥

मुरजः।

प्राप्य सर्वार्थसिद्धिं गां कल्याणेतः स्ववानतः।
अप्यपूर्वार्थसिद्ध्येगां कल्याकृत भवान् स्तुतः॥६१॥

प्राप्येति— प्राप्य कृत्वा। सर्वार्थसिद्धिं विश्वार्थनिष्पत्तिम्। गां पृथिवीम्। कल्याणेतः कल्याणानि स्वर्गापवर्गादीनि इतः प्राप्तः [illegible]। स्ववान् आत्मवान्। अतः अस्मात्। अपि। अपूर्वार्थस्य केवल-ज्ञानादिचतुष्टयस्य सिद्धिः प्राप्तिः अपूर्वार्थसिद्धिः तस्याः [illegible]

केवलज्ञानादिप्राप्त्या । इगां ईहां चेष्टां विहरणम् । हे कल्य समर्थ । अकृत कृतवान् । भवान् भट्टारकः । युतः युक्तः । समुदायार्थः—भवान् कल्याणेतः सन् पुनरपि आत्मवान् सन् प्राप्य सर्वार्थसिद्धि गा अस्मादूर्ध्व अपूर्वार्थसिध्या युतोपि हे कल्य त्व तथापि चेष्टा विहरणं अकृत अतः सत्यमेतत् " परार्था हि सतां चेष्टा " ॥ ६१ ॥

हे समर्थ ! आप गर्भजन्मादि पंच कल्याणकको प्राप्त हुये हो । आपने अपने शुद्धस्वरूप आत्माकी प्राप्ति की है । तथा इस पृथिवीको ही सर्वार्थसिद्धि अर्थात् सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करनेवाली बनादिया है । आप केवलज्ञानादि महा ऋद्धिके धारक हैं तथापि भव्यजीवोंके कल्याणार्थ विहार करते हो । अतएव यह वाक्य ठीक है कि ' परार्था हि सतां चेष्टा ' अर्थात् सज्जनोंके सम्पूर्ण कार्य दूसरोंकेलिये ही होते हैं ॥ ६१ ॥

मुरजः ।

भवत्येव धरा मान्या सुद्यातीति न विस्मये ।
देवदेव पुरा धन्या प्रोद्यास्यति भुवि श्रिये ॥६२॥

भवतीति-भवति भट्टारके त्वयि । एव अवधारणम् । धरा पृथिवी मान्या पूज्या । सुद्याति उद्गच्छति प्रभवति । इति यस्मात् । न विस्मयेहं न ममाश्चर्यम् । हे देवदेव देवाना देवः देवदेवः तस्य सम्बोधन हे देवदेव परमेश्वर । पुरा पूर्वमेव । धन्या पुण्या । प्रोद्यास्यति प्रोद्गमिष्यति प्रविष्यति । भुवि अस्मिन् लोके । श्रिये श्रीनिमित्तम् । समुदायेनार्थः कथ्यते-हे देव-देव सुद्याति भवति भगवति धरा मान्या भवतीति न विस्मयेहम् । यतः प्रोद्यास्यति भगवति पुरैव धन्या भुवि श्रीनिमित्तम् ॥ ६२ ॥

हे देवाधिदेव ! आपके जन्म लेनेसे ही यह पृथिवी पूज्य गिनी जाती है इसमें मुझे कुछ आश्चर्य नही होता है। क्योंकि आपके जन्म लेनेसे पन्द्रह महीने पहले ही प्रतिदिन रत्नोंकी वर्षा होनेसे इस लोकमें यह पृथिवी धन्य गिनी जाती है। फिर भला जन्म लेनेसे क्यों न पूज्य मानी जायगी ॥ ६२ ॥

मुरजः।

एतच्चित्रं पुरो धीर स्नपितो मन्दरे शरैः।
जातमात्रः स्थिरोदार क्वापि त्वममरेश्वरैः॥६३॥

एतदिति—एतत् प्रत्यक्षवचनम्। चित्रं आश्चर्य्यम्। पुरः पूर्वस्मिन् काले। धीर गभीर। स्नपितः अभिषेकितः। मन्दरे मेरुमस्तके। शरैः पानीयैः। जातमात्रः उत्पत्तिक्षणे। स्थिर सावष्टम्भ। उदार दानशील महन्। क्वापि एकस्मिन्नपि काले। त्व युष्मदो रूपम्। अमरेश्वरैः देवदेवेन्द्रैः। समुदायार्थः—हे धीर मन्दरे शरैः त्व स्नपितः जातमात्रः सन् हे स्थिरोदार अमरेश्वरैः पुरः क्वापि। चित्रमेतत्, कथं चित्रम्? बालस्य अस्माभिर्मन्दरे क्वापि न दृष्टं यतः ततः आश्चर्यम्। अथवा एवं चित्रमेतत् भट्टारके तीर्थे सर्वेपि प्राणिनः स्नान्ति। कथ पुरः देवैर्मन्दरे स्नपितश्चोद्यमेतत्। अथवा यो भवादृशः शरैः स कथं स्नाति तथापि भवान् देवैः शरैः पानीयैः स्नपितः चित्रमेतत् ॥ ६३ ॥

हे धीर ! उदार ! स्थिर ! आपके उत्पन्न होते ही समस्त देवों और इन्द्रोंने सुदर्शनमेरुके ऊपर क्षीरोदधि समुद्रके जलसे आपका अभिषेक किया यह बड़ा आश्चर्य है। हे प्रभो ! ऐसा आश्चर्य पहले कभी देखनेमे नहीं आया। बालक उत्पन्न होते ही सुदर्शन मेरु पर चढ़जाय, यह बात पहले

कभी देखनेमे नहीं आई इसलिये आश्चर्यजनक है। अथवा सम्पूर्ण संसारी प्राणी आपके चरणकमलोके सन्निकट आकर आपके चरणकमलोंके प्रभारूप तीर्थमे स्नान करते हैं परन्तु यहां देवोद्वारा आप ही स्नान कराये गये। यह भी वड़ा आश्चर्य है। अथवा आप ऐसे महा पुरुष, भला जलसे कैसे स्नान कर सकते है परन्तु देवोने जलसे ही आपका स्नान कराया यह भी वड़ा आश्चर्य है॥ ६३॥

अनन्तरपादमुरजः।

तिरीटघटनिष्ठ्यूतं हारीन्द्रौघविनिर्मितम्।
पदे स्नातः स्म गोक्षीरं तदेडित भगोश्चिरम्।६४।

तिरीटेति—तिरीटानि मुकुटानि तान्येव घटाः कुम्भाः तिरीटघटाः तैर्निष्ठ्यूत निर्गमितं तिरीटघटनिष्ठ्यूतम्। देवेन्द्रचक्रधरादिमुकुटघटनिर्गतम्। हारि शोभनम्। इन्द्रौघविनिर्म्मितं देवेन्द्रसमितिनिरचितम्। इन्द्राणामोघः इन्द्रौघः तेन विनिर्म्मितं कृतं इन्द्रौघविनिर्म्मितम्। पदे पादौ। स्नातःस्म स्नातवन्तौ। गोक्षीरं रश्मिपयः। अथवा पदे पदनिमित्त स्नातः स्म स्नातवन्तौ गोक्षीरम्। तदा स्नानानन्तरं सुरेन्द्रैः प्रणामकाले। ईडित पूजित। भगोः भगवन्। चिरं अत्यर्थं सुष्टुइत्यर्थः। किमुक्त भवति—हे भगवन् ईडित स्नानकाले ते पदे गोक्षीरं स्नातः स्म। किं विशिष्टे गोक्षीरं तिरीटघटनिष्ठ्यूतं हारीन्द्रौघविनिर्मितम्॥ ६४॥

हे भगवन्! हे पूज्य! जब आपका अभिषेक हो चुका और सब लोगोंने आपके चरणकमलोंको प्रणाम किया उस समय इन्द्र चक्रवर्ती आदि उत्तम पुरुषोंके मुकुटरूपी घटसे

जो मनोहर किरणरूपी जल निकला था, हे प्रभो आपके चरणकमलोंने उसी जलसे स्नान किया । अर्थात् स्नान पहले पैरोंसे प्रारम्भ किया जाता है परन्तु आपके चरणकमलों का स्नान आपके स्नान कर चुकने पर हुआ और वह भी विचित्र जलसे ! यह बड़ा आश्चर्य है ॥ ६४ ॥

मुरजः ।

कुत एतो नु सन् वर्णो मेरोस्तेपि च संगतेः ।
उत क्रीतोथ संकीर्णो गुरोरपि तु संमतेः ॥ ६५ ॥

कुतइति—कुतः कस्मात् । एतः आगतः । नु वितर्के । सन् शोभनः । वर्णः रूपं दीप्तिस्तेजः । मेरोः मन्दरस्य । ते तव, अपि च किं ननु इत्यर्थः । संगतेः सङ्गमात् मेलापकात् । उत वितर्के । क्रीतः द्रव्येण गृहीतः । अथ अहोस्वित् । संकीर्णः वर्णसङ्करः । गुरोः भर्तुः । अपि तु उताहो । सम्मतेः आज्ञायाः । किमुक्तं भवति- मेरोर्योयं सन् वर्णः स कुतः आगतः किं ते संगतेः उत क्रीतः अथ सङ्कीर्णः । अपि तु गुरोः संमतेः । ननु निश्चितोस्माभिस्त्वत्संमतेः ॥ ६५ ॥

हे प्रभो ! हम लोगोंको अबतक संदेह था कि सुमेरु पर्वतका ऐसा सुन्दर रूप कहांसे आया ? क्या आपने वहां स्नान किया इसीसे उसका सुन्दर रूप हो गया ? अथवा प्रचुर द्रव्य देकर ऐसा सुन्दर रूप खरीदा गया ? अथवा किसी सुन्दर वस्तुका रूप लाकर इसमें मिला दिया गया ? परन्तु हे भगवन् ! अब हमें निश्चय होगया कि मेरुका यह सुन्दररूप और कहींसे नहीं आया केवल आपकी आज्ञा मात्रसे हो गया है ॥ ६५ ॥

अनन्तरपादमुरजः ।

हृदि येन धृतोसीनः स दिव्यो न कुतो जनः ।
त्वयारूढो यतो मेरुः श्रिया रूढो मतो गुरुः ॥६६॥

हृदीति—हृदि हृदये । येन जनेन । धृतो विधृत. । असि भवसि । इनः स्वामी इति कृत्वा । सः पूर्वोक्तः प्रतिपादकः । दिव्यः पुण्यवान् कृतार्थ इत्यर्थः । न कुतः न कस्मात् । जनः भव्यलोकः । त्वया भट्टारकेण । आरूढः अधिष्ठितः । यतो यस्मात् । मेरुः गिरिराजः श्रिया लक्ष्म्या । रूढः प्रख्यातः श्रीमान् जातः । मतः ज्ञातः । गुरुः महान् । एवं सम्बन्धः कर्त्तव्यः—हे भट्टारक त्व येन जनेन हृदि धृतो भवसि इन इति कृत्वा स जनः कुतो न दिव्यः किन्तु दिव्य एव । यतो मेरुरपि त्वयारूढः सन् श्रिया रूढः मतः गुरुश्च मतः ॥६६॥

हे भगवन् ! जो भव्यजीव आपको स्वामी मानकर अपने हृदयमें धारण करता है वह अवश्य ही पुण्यवान् हो जाता है । क्योंकि सुमेरुपर्वत केवल आपके चरणकमलोंके स्पर्श करनेमात्रसे ही श्रीमान् और महान् होगया ॥ ६६ ॥

इतिधर्मनाथस्तुतिः ।

मुरजः ।

चक्रपाणेर्दिशामूढा भवतो गुणमन्दरम् ।
के क्रमेणेदृशा रूढाः स्तुवन्तो गुरुमक्षरम् ॥६७॥

चक्रेति—चक्रपाणेः चक्रवर्तिनः पूर्वराज्यावस्थाविशेषणमेतत् । दिशामूढा दिग्मूढा अविज्ञातदिशः । भवतः भट्टारकस्य । गुणमन्दर

गुणपर्वतम् । के किमो रूपम् । क्रमेण न्यायेन परिपाट्या । ईदृशा ईदृग्भूतेन । रूढाः प्रख्याताः । स्तुवन्तो वन्द्यमानाः । गुरुं महान्तम् । अक्षरं अनश्वरम् । किमुक्तं भवति—चक्रपाणेर्भवतः गुणमन्दरं ईदृशा क्रमेण मुरजबन्धैश्चक्रवृत्तैः स्तुवन्तः रूढाः के नाम दिग्मूढाः अपि तु न भवन्त्येव । किं विशिष्टं गुणमन्दरं गुरुं अक्षरम् ॥ ६७ ॥

हे प्रभो ! आप चक्रवर्ती हैं । जो पुरुष मेरे सदृश मुरजबंध चक्रवृत्त आदि चित्रबद्ध स्तोत्रोंसे आपके अविनश्वर और महान् गुणरूपी मेरुपर्वतकी स्तुति करते हैं वे प्रसिद्धपुरुष क्या कभी दिशाभूल हो सकते हैं । अर्थात् कभी नही । अभिप्राय यह है कि जो प्रतिदिन मेरुपर्वतको देखता है उसे कभी दिग्भ्रम नही होसकता । क्योंकि यह बात सब कोई जानते हैं कि मेरुपर्वत सबओरसे उत्तरदिशामें ही रहता है । इसीप्रकार जो पुरुष भगवानके गुण स्मरण करते हैं वे कभी अज्ञानी नहीं रह सकते । वे केवलज्ञान पाकर अवश्य ही मुक्त होते हैं ॥ ६७ ॥

मुरज ।

त्रिलोकीमन्वशास्संगं हित्वा गामपि दीक्षितः ।
त्वं लोभमप्यशान्त्यंगं जित्वा श्रीमद्धिदीशितः॥६८॥

त्रिलोकीति—त्रिलोकी त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी " तद्धितार्थ[illegible] [illegible]विधिः" तां त्रिलोकीम् । अन्वशाः अनुशास्तिस्म अनुशासितवान् । संगं परिग्रहम् । हित्वा त्यक्त्वा । गामपि पृथिवीमपि । दीक्षितः प्रव्रजितः । त्वं युष्मदो रूपम् । लोभमपि सकलवस्तुविषयापि तृष्णामपि । [illegible] [illegible] प्रशम[illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ङ्गम्। जित्वा विजित्य। श्रीमद्विदीशितः लक्ष्मीमद्ज्ञानीश्वरः। विदा मीशितः विदीशितः श्रीमाश्चासौ विदीशितश्च श्रीमद्विदीशितः। किमुक्तं भवति—हे शान्तिभट्टारक त्वं संगं हित्वा गामपि दीक्षितः सन् त्रिलोकीमन्वशाः लोभमपि अशान्त्यगं जित्वा श्रीमद्विदीशितः सन्॥६८॥

हे प्रभो! शान्तिनाथ! आप सम्पूर्ण परिग्रह और समस्त पृथिवीको छोड़कर दीक्षित होगये तथापि आपका शासन (आज्ञा वा मत) तीनों लोकोंमें प्रचलित है। हे भगवन्! आपने तृष्णा भी छोड़दी और अशान्ति अर्थात् क्लेश देनेके साधनभूत मोहनीय आदि कर्मोको भी जीत लिया तथापि आप लक्ष्मीवान् और ज्ञानियोंके ईश्वर ही गिने जाते हो यह बड़ा आश्चर्य है॥ ६८॥

मुरजः।

केवलाङ्गसमाश्लेषबलाढ्य महिमाधरम्।
तव चांगं क्षमाभूषलीलाधाम शमाधरम्॥ ६९॥

केवलेति—केवलं केवलज्ञानम्। अङ्गं शरीरम्। केवलमेव अङ्गं केवलाङ्ग केवलाङ्गेन समाश्लेषः सम्बन्धः आलिङ्गन केवलाङ्गसमाश्लेषः तस्य तेन तदेव वा बल सामर्थ्यं केवलाङ्गसमाश्लेषबलं तेन आढ्यः परिपूर्णः केवलाङ्गसमाश्लेषबलाढ्यः तस्य सम्बोधनं हे केवलाङ्गसमाश्लेष बलाढ्य। अथवा केवलाङ्गसमाश्लेषबलाढ्या महिमा केवलाङ्गसमाश्लेषब लाढ्यमहिमा तां धरतीति अंगस्यैव विशेषणम्। महिमा माहात्म्य महिमां धरतीति महिमाधर माहात्म्यावस्थानम्। तव ते। च अवधारणेर्थे दृष्टव्यः। अङ्ग शरीरम्। क्षमैव भूषा यस्य तत् क्षमाभूषम्। लीलाना कमनीयाना धाम अवस्थान लीलाधाम। क्षमाभूषं च तत् लीलाधाम

च तत् क्षमाभूषलीलाधाम । शमस्य उपशमस्य आधरः गौरवं यस्मिन् तत् शमाधरम् । अङ्गमिति सम्बन्धः । समुच्चयार्थः–हे शान्तिभट्टारक केवलाङ्गसमाश्लेषबलाढ्य महिमाधरं तव चाङ्गं किं विशिष्टं क्षमाभूष-लीलाधाम शमाधरम् । किमुक्तं भवति–तवैवाङ्गमीदृग्भूतं नान्यस्य । अत-स्त्वमेव परमात्मा इत्युक्तं भवति ॥ ६९ ॥

हे देव ! आपका यह दिव्य शरीर केवलज्ञानसे सुशोभित है । अनन्त बलसे विभूषित है । बड़ी महिमाको धारण करने वाला है । सुन्दरताका स्थान है । उत्तमक्षमा ही इसका अलं-कार है और शान्तरूपता ही इसका गौरव है । हे भगवन् ! ऐसा शरीर केवल आपका ही है अन्य किसीका नहीं हो सकता । अतएव हे देव ! आप ही परमात्मा हो सकते हैं ॥ ६९ ॥

मुरजः ।

त्रयोलोकाः स्थिताः स्वैरं योजनेधिष्ठिते त्वया ।
भूयोन्तिकाः श्रितास्तेरं राजन्तेधिपते श्रिया ॥७०॥

त्रय इति—त्रयोलोकाः भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिमनुष्य-तिर्यञ्चः । स्थिताः स्वैरं स्वेच्छया । योजने सगव्यूतियोजनचतुष्टये । अधि-ष्ठिते अध्यासिते । त्वया युष्मदो भान्तस्य रूपम् । भूयः बाहुल्येन पुनरपि वा । अन्तिकाः समीपस्थाः । श्रिताः आश्रिताः । ते तव । तरं यथा-र्थम् । राजन्ते शोभन्ते । अधिपते परमात्मन् । श्रिया लक्ष्म्या । समुच्चया-र्थः–हे भट्टारक त्वया अधिष्ठिते योजनमात्रे त्रयोलोकाः स्वैरं स्थिताः भूयोऽन्तिकाः श्रिताः सन्तः हे अधिपते श्रिया तरं राजन्ते ॥ ७० ॥

हे भगवन् ! शान्तिनाथ ! जिस समवसरण में आप विराजमान होते हैं उसकी लम्बाई चौड़ाई केवल साढ़े चार योजन

है परन्तु उतने ही स्थानमे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क, कल्पवासी मनुष्य, तिर्यंच आदि तीनोंलोकोंके जीव स्वच्छंदता पूर्वक बैठ सकते हैं । और जो जीव आपके समीप आकर आपका आश्रय लेते हैं वे अवश्य ही आपकी ऐसी उत्कृष्ट लक्ष्मीसे सुशोभित होते हैं । अर्थात् यह आपका अपरिमित माहात्म्य है कि आपके साढ़ेचार योजनके ही समवसरणमें तीनो लोकोके जीव आश्रय पा लेते हैं। और जो जीव आपके समवसरणका आश्रय लेते है वे अवश्य ही आपके सदृश पूज्य हो जाते है ॥ ७० ॥

मुरजः।

परान् पातुस्तवाधीशो बुधदेव भियोषिताः।
दूराद्धातुमिवानीशो निधयोवज्ञयोज्झिताः॥७१॥

परेति—परान् पातुः अन्यान् रक्षकस्य । तव ते । अधीशः स्वामिनः । बुधानां पण्डितानां देवः परमात्मा बुधदेवः तस्य सम्बोधनं हे बुधदेव सत्यपरमात्मन् । भिया भयेन । उषिताः स्थिताः 'वस् निवासे इत्यस्य धोः क्तान्तस्य कृताजित्वस्य रूपम्' । दूरात् दूरेण हातुमिव त्यक्तुमिव । अनीशः असमर्थाः निधयः निधानानि । अवज्ञयोज्झिताः अनादरेण त्यक्ताः । अस्य एवं सम्बन्धः कर्त्तव्यः-हे देवदेव परान् पातुः तवाधीशः त्वया निधयोऽवज्ञया उज्झिताः भिया दूरेण उषिताः त्वा हातुमिव अनीशाः ॥ ७१ ॥

हे भगवन् ! आप पंडितोके भी देव अर्थात् परमात्मा हैं भव्य जीवोके रक्षक और सबके स्वामी हैं। हे प्रभो ! आपने नौ निधि और चौदह रत्न बड़े तिरस्कारसे अर्थात् तुच्छ

समझ कर छोड़ दिये । और जो क्रोधादिक अंतरंगशत्रु स्वयं असमर्थ थे वे मानो आपको छोड़नेकेलिये ही डर कर दूर जा खड़े हुये । अर्थात् क्रोधादिक अंतरंग परिग्रह तो स्वयं भाग गये और निधिरत्न आदि बहिरंग परिग्रह आपने छोड़ दिये । अतएव हे प्रभो ! निष्परिग्रह परमात्मा आप ही हो ॥ ७१ ॥

पादादियमकश्लोकः ।

समस्तपतिभावस्ते समस्तपति तद्द्विषः ।
संगतोहीन भावेन संगतो हि न भास्वतः ॥७२॥

समस्तेति—समस्तपतीति प्रथमपादे यद्वाक्यं तद्द्वितीयपादेपि पुनरुच्चरितं । संगतोहीनभेति तृतीयपादे यद्वाक्यं तच्चतुर्थपादेपि पुनरुच्चरितम् यतः ततः पादादियमकः ।

समस्तानां निरवशेषाणां पतिभावः स्वामित्वं समस्तपतिभावः विश्वपतित्वम् । ते तव । समः समानः । तपति सन्तापयति । तद्द्विषः तस्य समस्तपतिभावस्य द्विषः शत्रवः तद्द्विषः तान् तद्द्विषः तच्छत्रून् । हे संगतोहीन परिग्रहच्युत । भावेन स्वरूपेण । सगतः संश्लिष्टः । हि स्फुटम् । न प्रतिषेधे । भास्वतः दिनकरस्य । समुदायस्यार्थः—हे संगतोहीन समस्तपतिभावस्ते समोऽपि तथापि तपति तद्द्विषः यस्मात् ततः भास्वतो भावेन न संगतो हि स्फुटम् ॥ ७२ ॥

हे भगवन् यद्यपि आप भी समस्त पति अर्थात् संपूर्ण जगतके स्वामी हैं और सूर्य भी समस्तपति अर्थात् ससारको प्रकाश करनेवाला स्वामी है । अथवा सूर्य समःतपति अर्थात् संसारको समानरीतिसे सतप्त करता है । किन्तु हे भगवन् ! वह आपकी समानता कदापि नहीं कर सकता । क्योंकि आपने

रागद्वेष अथवा अपने कर्मरूप शत्रुवोंको सर्वथा नष्ट करादिया और सूर्य अपने अंधकारादि शत्रुओंको नष्ट कदापि नहीं करसकता क्योंकि रात्रिमें अथवा गुफा आदिमें अंधकारका उदय रहता ही है। इसलिये हे परिग्रहरहित भगवन् ! सूर्यके साथ आपके स्वरूपकी समानता करना सर्वथा असंगत है ॥ ७२ ॥

मुरजः।

नयसत्त्वर्त्तवः सर्वे गव्यन्ये चाप्यसंगताः।
श्रियस्ते त्वयुवन् सर्वे दिव्यर्ध्या चावसंभृताः॥७३॥

नयेति—नयाः नैगमादयः। सत्त्वाः अहिनकुलादयः। ऋतवः प्रावृट् प्रभृतयः। नयाश्च सत्त्वाश्च ऋतवश्च नयसत्त्वर्त्तवः एते सर्वे परस्पर विरुद्धाः। सर्वे समस्ताः। गवि पृथिव्याम्। न केवलमेते किन्तु अन्ये चापि ये विरुद्धाः। असंगताः परस्परवैरिणः। श्रियः माहात्म्यात्। ते तव। तु अत्यर्थं। अयुवन् संगच्छन्तेस्म। यु मिश्रणे इत्यस्य धोः लङन्तस्य रूपम्। सर्वे विश्वे। दिव्यर्ध्या च दिवि स्वर्गे भवा दिव्या, दिव्या चासौ ऋद्धिश्च दिव्यर्द्धिः तया दिव्यर्ध्या देवकृतव्यापारेणेत्यर्थः। अवसंभृताः निष्पादिताः कृता इत्यर्थः। किमुक्त भवति–हे शान्तिनाथ ते श्रियः तव माहात्म्यात् गवि पृथिव्यां नयसत्त्वर्त्तवः सर्वे अन्ये चाप्यसंगताः एते सर्वे अत्यर्थं अयुवन् संगतीभूताः केचन पुनर्दिव्यर्ध्या च अवसंभृताः संगतीकृताः एतदेव तव माहात्म्यम् नान्यस्य ॥ ७३ ॥

हे प्रभो ! नैगम संग्रह आदिक नय, अहि नकुल कुत्ता बिल्ली आदि प्राणी और बसन्त ग्रीषम आदि ऋतुयें सब परस्पर विरुद्ध हैं, एक दूसरेके विरोधी हैं परन्तु हे प्रभो ! आपके माहात्म्यसे ये सब परस्परविरोधी पदार्थ एक साथ होकर इस

पृथिवी पर विचरते हैं इतना ही नहीं किन्तु इस संसारमें जो जो परस्पर विरुद्ध पदार्थ हैं वे सब केवल आपके ही माहात्म्य से इकट्ठे होकर विचरते हैं और इनमेंसे कितने ही जीव अणिमा महिमा आदि दिव्य ऋद्धियोंसे विभूषित अर्थात् देव इन्द्र आदि हो जाते हैं। हे देव ! यह केवल आपका ही माहात्म्य है अन्य किसीका ऐसा माहात्म्य नहीं हो सकता ॥ ७३ ॥

मुरजः ।

तावदास्व त्वमारूढो भूरिभूतिपरंपरः ।
केवलं स्वयमारूढो हरिर्भाति निरम्बरः ॥ ७४ ॥

तावदिति—तावत् तदः वत्वं तस्य कृतात्वस्य रूपम् । आस्व तिष्ठ। आस उपवेशने इत्यस्य धोर्लोडन्तस्य प्रयोगः। तावदास्वेति किमुक्त भवति तिष्ठ तावत् । त्व युष्मदो रूपम् । आरूढः प्रख्यातः । भूरिभूति-परंपरः भूरयश्च ता भूतयश्च भूरिभूतयः तासां परंपरा यस्यासौ भूरिभूति-परंपरः बहुविभूतिनिवास इत्यर्थः । केवलं किन्तु इत्यर्थः । स्वयमारूढः स्वेनाध्यासितः । हरिः सिंहः । भाति शोभते । निरम्बरः वस्त्ररहितः । किमुक्तं भवति- हे भट्टारक त्वं तावदास्व भूरिभूतिपरंपरः निरम्बर इति कृत्वा यस्त्वारूढः ख्यातः सः किन्तु स्वयमारूढः हरिरपि भाति त्वं पुनः शोभसे किमत्र चित्रम् ॥ ७४ ॥

हे प्रभो ! यद्यपि आप अंतरंग बहिरंग आदि अनेक विभू-तियोंसे विभूषित हो तथापि निरम्बर अर्थात् वस्त्ररहित कहलाते हो । इसलिये आपको सुशोभित कहना अनुचित जान पड़ता है । किन्तु यह बात सर्वथा निश्चित है कि जिस सिंहासनपर आप विराजमान होते हो वह सिंहासन अतिशय सुशोभित है।

जाता है । अभिप्राय यह है कि जब केवल आपके विराजमान होनेसे ही सिंहासन परम सुशोभित हो जाता है तब आप सुशोभित होते हो इसमे आश्चर्य ही क्या है ॥ ७४ ॥

मुरजः ।

नागसे त इनाजेय कामोद्यन्महिमार्द्दिने ।
जगत्त्रितयनाथाय नमो जन्मप्रमाथिने ॥ ७५ ॥

नागेति—नागसे[1] अविद्यमानापराधाय । नञ् प्रतिरूपकोयमन्यो नकार स्ततो नञो नित्यमनादेशो न भवति । ते तुभ्यम् । इन स्वामिन् । अजेय अजय्य । उद्यती चासौ महिमा च उद्यन्महिमा कामस्य स्मरस्य उद्यन्महिमा तामर्द्दयति हिंसयतीत्येवंशील: कामोद्यन्माहिमार्द्दी तस्मै कामोद्यन्महिमार्द्दिने रागोद्रेकमाहात्म्यहिंसिने । जगत्त्रितयनाथाय जगता त्रितयं जगत्त्रितयं जगत्त्रितयस्य नाथः स्वामी जगत्त्रितयनाथः तस्मै जगत्त्रितयनाथाय त्रिभुवनाधिपतये । नम: ङि संज्ञकोयं शब्दः पूजावचन: । जन्मप्रमाथिने जन्म ससार: तत् प्रमथ्नाति विनाशयतीति जन्मप्रमाथी तस्मै जन्मप्रमाथिने जन्मविनाशिने । समुदायार्थ:- हे शान्तिनाथ इन अजेय ते तुभ्यं नमः । कथंभूताय तुभ्य नागसे कामोद्यन्महिमार्द्दिने जगत्त्रितयनाथाय जन्मप्रमाथिने ॥ ७५ ॥

हे स्वामिन् ! हे अजेय ! आप निष्पाप है, संसारमे चारो ओर फैली हुई कामदेवकी महिमाको नाश करनेवाले हैं, तीनो लोकोके स्वामी हैं और जन्ममरणरूप संसारको नाश करनेवाले है । हे देव इन उपर्युक्त गुणोंके धारक शान्तिनाथ भगवान ! मैं आपकेलिये बार २ नमस्कार करता हूं ॥ ७५ ॥

---

१ आगः पाप न विद्यते आग' यस्यासौ नागाः तस्मै नागसे ।

मुरजः । श्लोकद्वितयम् ।

रोगपातविनाशाय तमोनुन्महिमायिने ।
योगख्यातजनार्च्याय श्रमोच्छिन्मंदिमासिने ॥७६॥

रोगेति—श्लोकद्वितयम् । अयमेव श्लोको द्विवारः पठनीयो द्वेधा व्याख्येयश्चेति कृत्वा श्लोकयमक इति भावः ।

रोगाः व्याधयः पाताः पातकानि कुत्सिताचरणानि, रोगाश्च पाताश्च रोगपाताः तान् विनाशयतीति रोगपातविनाशः तस्मै रोगपातविनाशाय । बहुलवचनात् कर्त्तरि अङ् घञ् वा । तमः अज्ञानं तत् नुदतीति तमोनुत् अज्ञानहन्तेत्यर्थः । महिमानं माहात्म्यं पूजां अयते गच्छत्येवंशीलः 'शीलार्थे णिन्' महिमायी । तमोनुच्चासौ महिमायी च तमोनुन्महिमायी तस्मै तमोनुन्महिमायिने । योगेन ध्यानेन शुभानुष्ठानेन ख्याताः प्रख्याताः योगख्याताः योगख्याताश्च ते जनाश्च योगख्यातजनाः योगख्यातजनानां अर्चा पूजा सत्कारः यस्यासौ योगख्यातजनार्चः गणधरादिपूज्य इत्यर्थः । अथवा योगख्यातजनैरर्च्यः इति योगख्यातजनार्च्यः तस्मै योगख्यातजनार्च्याय । श्रमः स्वेदः तं उच्छिनत्ति विदारयतीति श्रमोच्छित् । मन्दिमा मृदुत्व सर्वदयास्वरूप तस्मिन् आस्ते इति मन्दिमासी । श्रमोच्छिच्चासौ मन्दिमासी च श्रमोच्छिन्मन्दिमासी तस्मै श्रमोच्छिन्मन्दिमासिने । इन ते नमः इत्येतदनुवर्त्तते । तैः एवमभिसम्बन्धः कर्त्तव्यः-हे शान्तिभट्टारक इन स्वामिन् ते तुभ्यं नमोस्तु किं विशिष्टाय तुभ्यं रोगपातविनाशाय पुनरपि किं विशिष्टाय तमोनुन्महिमायिने पुनः योगख्यातजनार्च्याय श्रमोच्छिन्मन्दिमासिने ॥ ७६ ॥

हे स्वामिन् शान्तिनाथ ! आप अनेक रोगोंके नाश करने वाले हैं। अनेक पापोंके दूर करनेवाले और अज्ञानरूपी अंधकार

को विनाश करनेवाले है । आपकी महिमा जगत्पूज्य है । योगियोंमे प्रसिद्ध ऐसे गणधरादि देव भी आपकी पूजा करते हैं । प्राणीमात्रपर दया दिखलाना आपका स्वभाव है । स्वेद खेद निद्रा आदि अठारह दोषोंसे आप रहित हैं । हे प्रभो ! ऐसे आपके लिये मैं वार २ नमस्कार करता हूं ॥ ७६ ॥

मुरजः ।

रोगपातविनाशय तमोनुन्महिमायिने ।
योगख्यातजनार्चायः श्रमोच्छिन्नन्दिमासिने ७७

रोगपेति—रोग: भङ्गः परिभव: तं पातयति घातयतीति 'कर्मण्यण्' रोगपात: । वि विनष्टः ध्वस्तः नाशः ससारपर्यायो यस्य देवविशेषस्यासौ विनाश: । रोगपातश्चासौ विनाशश्च रोगपातविनाश: तस्मै रोगपातविनाशाय । तम: तिमिरं अलोकाकाश वा, कुत:—' अपोह: शब्दलिङ्गाभ्या यत: ' तम:शब्देन किमुच्यते आलोकाभावः कस्मिन् अत आह अलोकाकाशे, ततस्तम:शब्देन अलोकाकाशस्य ग्रहणम् । नुत् प्रेरणं अथवा चतुर्गतिनिमित्तं यत्कर्म्म तत् नुत् इत्युच्यते तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यं भवति । महि: पृथिवीलोक: जीवादिद्रव्याणि इत्यर्थ: इकारान्तोपि महिशब्दो विद्यते । तमश्च नुच्च महिश्च तमोनुन्महय: ता: मिनाति परिच्छिनत्तीति तमोनुन्महिमायी तस्मै तमोनुन्महिमायिने । य: यद: वान्तस्य रूपम् । अग: पर्वत: ख्यात: प्रख्यात: प्रधान:,अगश्चासौ ख्यातश्च अगख्यात: मन्दर इत्यर्थ: । जनाना इन्द्रादीनां अर्चा पूजा जनार्चा, अगख्याते जनार्चा अगख्यातजनार्चा, ता अयते गच्छतीति

---

१ महि: सर्वसहा मही इति वैजयन्ती ।

अगख्यातजनार्चाय: । श्रम: क्लेश: उच्छित् उच्छेद: विनाश: । मन्दिमा जाड्यं मूर्खत्वम्, श्रमश्च उच्छिच्च मन्दिमा च श्रमोच्छिन्मन्दिमानः तान् अस्यति क्षिपतीति श्रमोच्छिन्मन्दिमासी तस्मै श्रमोच्छिन्मन्दिमासिने । किमुक्तं भवति—अगख्यातजनार्चाय: य: स: त्वं हे शान्तिभट्टारक अतस्तुभ्यं नमोस्तु । किं विशिष्टाय तुभ्यं रोगपातविनाशाय तमोनुन्म-हिमायिने श्रमोच्छिन्मन्दिमासिने ॥ ७७ ॥

हे प्रभो शान्तिनाथ! आप आत्माका पराभव करनेवाले कर्मसमूहको घात करनेवाले हैं, संसारकी नर नारकादि पर्यायों से रहित हैं, इस षट् द्रव्यात्मक पृथिवीलोक अर्थात् लोकाकाश अलोकाकाश और चतुर्गतियोंके कारणभूत शुभाशुभ कर्मोंको जाननेवाले अथवा प्रकाश करनेवाले हैं, तथा क्लेश, विनाश, मूर्खता आदि दुर्गुणोंको सर्वथा नाश करनेवाले हैं । हे देव ! मेरु पर्वत जैसे मनोहर स्थानपर इन्द्रादिक देवोंने भी आपकी पूजा की है । अतएव हे प्रभो ! आपकेलिये मेरी वार २ नमस्कार हो ॥ ७७ ॥

मुरजः ।

प्रयत्येमान् स्तवान् वश्मि प्रास्तश्रान्ताकृशार्त्तये ।
नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्ताय शान्तये ॥ ७८ ॥

प्रयत्येति—प्रयत्य प्रयत्न प्रकृत्य । इमान् एतान् । स्तवान् स्तुतीः । वश्मि वच्मि । कृशा तन्वी न कृशा अकृशा महती । अर्तिः पीडा अकृशा चासौ आर्तिश्च अकृशार्त्तिः । श्रान्ताः दुःखिताः । श्रान्तानां अकृशार्त्तिः श्रान्ताकृशार्त्तिः । प्रास्ता ध्वस्ता श्रान्ताकृशार्त्ति-र्येनासौ प्रास्तश्रान्ताकृशार्त्तिः तस्मै प्रास्तश्रान्ताकृशार्त्तये । नयाश्च प्रमाणं

च नयप्रमाणानि नयप्रमाणाना वाचः वचनानि नयप्रमाणवाचः। नयप्रमाणवाच एव रश्मयो गभस्तयः नयप्रमाणवाग्रश्मयः तैर्ध्वस्तं निराकृतं ध्वान्त येनासौ नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्तः तस्मै नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्ताय शान्तये षोडशतीर्थंकराय। किमुक्त भवति–शान्तये इमान् स्तवान् प्रयत्य वच्म्यहम्। किं विशिष्टाय शान्तये प्रास्तश्रान्ताक्शार्त्तये नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्तायेत्यर्थः॥ ७८॥

हे देव शान्तिनाथ! आप दुःखी लोगोंके बड़े २ दुःखोंको दूर करनेवाले है, नय तथा प्रमाणोके वचनरूप किरणसमूहसे मिथ्याज्ञानरूपी अंधकारको नाश करनेवाले हैं। हे प्रभो! मैं इस स्तुतिके बहानेसे आपसे कुछ कहना चाहता हूं॥ ७८॥

सर्वपादमध्ययमकः।

स्वसमान समानन्द्या भासमान स मानघ।
ध्वंसमानसमानस्तत्रासमानसमानतम्॥ ७९॥

स्वसेति—सर्वेषु पादेषु समानशब्दः पुनः पुनरुच्चारितो यतः। स्वेन आत्मना समानः सदृशः स्वसमानः नान्येनोपम इत्यर्थः तस्य सम्बोधनं स्वसमान। समानन्द्याः क्रियापदम्, सं आङ् पूर्वस्य टुनदिसमृद्धावित्यस्य धोः लिङन्तस्य रूपम्। भासमान शोभमान सः इति तदः कृतात्वस्य रूपम्। मा अस्मदः इबन्तस्य प्रयोगः। अनघ न विद्यते अघं पापं यस्यासावनघः तस्य सम्बोधन हे अनघ घातिचतुष्टयरहित। ध्वंसमानेन नश्यता समः समानः ध्वंसमानसमः नश्यत्समान इत्यर्थः। अनस्तः अविनष्टः त्रासः उद्वेगः भय यस्य तदनस्तत्रासं, मनः एव मानसं स्वार्थिकः अण्, अनस्तत्रासं मानसं यस्यासावनस्तत्रासमानसः। ध्वंसमानसमश्चासौ अनस्तत्रासमानसश्च ध्वंसमानसमानस्तत्रासमानसः तं

ध्वसमानसमानस्तत्रासमानसम् । आनत प्रणतम् । समुदायार्थः—हे शान्तिभट्टारक स्वसमान भासमान अनघ परमार्थत्वेन ख्यातोयस्त्वं स मा समानव्याः किं विशिष्ट मा ध्वसमानसमानस्तत्रासमानस आनत महद्भक्त्या प्रणतम् ॥ ७९ ॥

हे भगवन्! शान्तिनाथ! आप अपने ही समान हैं। संसार में अन्य ऐसा कोई नहीं है जिसकी उपमा आपके लिये दे सके। आप अतिशय शोभायमान हैं निष्पाप और प्रसिद्ध हैं। हे प्रभो मै बड़ी भक्तिसे आपके चरणकमलोंमें नमस्कार कर रहा हूं, मेरे चित्तका उद्वेग नष्ट नहीं हुआ है किंतु मैं प्राय: नष्ट होनेके सन्मुख हूं। इसलिये हे देव! मुझे वर्द्धनशील अर्थात् आत्मोन्नति करनेमें समर्थ कीजिये ॥ ७९ ॥

मुरज.।

सिद्धस्त्वमिह संस्थानं लोकाग्रमगमः सताम्।
प्रोद्धर्त्तुमिव सन्तानं शोकाब्धौ मग्नमंक्ष्यताम् ॥८०॥

सिद्ध इति—सिद्धः निष्ठितः कृतकृत्यः । त्वं भवान् । इह अस्मिन् । सस्थानं समानस्थानं सिद्धयोग्यस्थान सिद्धमित्यर्थः । लोकाग्रं त्रिलोकमस्तकम् । अगमः गतः गमेर्लङन्तस्य रूपम् । सता पण्डितानां भव्यलोकानाम्। प्रोद्धर्तुमिव उत्तारितुमिव । सन्तान समूहम् । शोक एव अब्धिः समुद्रः शोकाब्धिः दुःखसमुद्र इत्यर्थः तस्मिन् शोकाब्धौ । मग्नाः प्रविष्टाः मङ्क्ष्यन्तः प्रवेक्ष्यन्तः मग्नाश्च मङ्क्ष्यन्तश्च मग्नमंक्ष्यन्तः तेषां मग्नमंक्ष्यताम् प्राप्तशोकानामित्यर्थः । समुदायार्थः—हे शान्तिनाथ यः इह सिद्धः त्वं सस्थानं लोकाग्रं अगमः

सतां मग्नमंक्ष्यतां सन्तानं प्रोद्धर्तुमिव । किमुक्तं भवति—भट्टारकस्य सिद्धिगमनं सकारणमेव ' परार्थे हि सतां प्रयत्नः ॥ ८० ॥

हे प्रभो ! शान्तिनाथ ! आप इस लोकमें ही कृतकृत्य (सिद्ध वा मुक्त) हो चुके थे । तथापि लोकाग्रभाग अर्थात् सिद्धशिलापर जा विराजमान हुये । हे देव ! आपका यह ऊपर जाना निष्प्रयोजन नहीं है किन्तु जन्म मरण रूप दुःखसागरमें पड़े हुये वा पड़ते हुये भव्यजीवोंके समूहको निस्तार करनेके लिये ही आप ऊपर जा विराजमान हुये हो। अभिप्राय यह है कि जैसे कोई विशेष शक्तिशाली पुरुष अपनी सामर्थ्यसे किसी ऊंचे स्थानपर चढ़ जाय तो वह नीचेके जलाशयमें पड़े हुये प्राणियोंको रस्सी द्वारा सहज रीतिसे ऊपर खींच सकता है । उसी प्रकार अपने गुणों द्वारा संसारसमुद्रमें पड़े हुये प्राणियो को उद्धार करनेके लिये ही मानो शान्तिनाथ भगवान ऊपर सिद्धशिलापर जा विराजमान हुये हैं ॥ ८० ॥

इति शान्तिनाथस्तुतिः।

सर्वपादान्तयमकः।

कुंथवे सुमृजाय ते नमूनरुजायते ।
ना महीष्वनिजायते सिद्धये दिवि जायते ॥ ८१ ॥

कुंथवे इति—सर्वपादान्तेषु जायते इति पुनः पुनरावर्त्तितं यतः। कुंथवे कुंथुभट्टारकाय सततदातातीर्थकराय । सुमृजाय सुशुद्धाय । ते तुभ्यम् । नमूः नमनशीलः विसर्जनीयस्ययत्नम् , ऊना विनष्टा रुजा

व्याधि र्यस्य स ऊनरुजः ऊनरुज इव आत्मानमाचरतीति ऊनरुजायते । ना पुरुषः । महीषु पृथिवीषु । हे अनिज निश्चयेन जायते इति निजः न निजः अनिजः तस्य सम्बोधनं हे अनिज । अयते गच्छति । सिद्धये मोक्षाय गत्यर्थानामप् । दिवि स्वर्गे । जायते उत्पद्यते । णमु प्रह्वत्वे शब्दे इत्यस्य धोः प्रयोगे विकल्पेनाप् प्रभवति । वक्तव्येन समुदायार्थः—हे अनिज ते तुभ्यं कुंथवे सुमृजाय नमः ना पुरुषः इह लोकेषु ऊनरुजायते अयते सिद्धये दिवि स्वर्गे जायते ॥ ८१ ॥

हे भगवन् ! कुंथुनाथ ! आप वास्तवमें जन्म मरण रहित हैं, परम शुद्ध हैं । हे देव ! जो पुरुष आपके प्रति नम्रीभूत होता है आपको नमस्कार करता है वह इस लोकमें सम्पूर्ण आधि व्याधियोंसे रहित हो जाता है तथा परलोकमे सिद्धगतिको प्राप्त होता है अथवा स्वर्गमें उत्पन्न होता है ॥ ८१ ॥

मुरजः ।

यो लोके त्वा नतः सोतिहीनोप्यतिगुरुर्यतः ।
वालोपि त्वा श्रितं नौति को नो नीतिपुरुः कुतः ८२

यो लोके इति—यः कश्चित् । लोके भुवने । त्वा युष्मदः इवन्तस्य रूपम् । नतः प्रणतः । सः तद वान्तस्य रूपम् । अतिहीनोपि अतिनिकृष्टोपि । अतिगुरुः महाप्रभु र्भवति इत्यध्याहार्यम् । यतः यस्मात् । बालोपि अज्ञान्यपि मूर्खोपि । त्वा कुंथुभट्टारकं । श्रितं श्रेय आश्रयणीयम् । नौति स्तौति । को नो को न । नीतिपुरुः नीत्या बुद्ध्या पुरुः महान् । कुतः कस्मात् । संक्षेपार्थः—हे कुंथुभट्टारक त्वाश्रितमिह लोके योतिहीनोपि नतः सोतिगुरुर्यतः ततः बालोपि त्वा को न नौति नीतिपुरुः पुनः कुतो न नौति किन्तु नौत्येव ॥ ८२ ॥

हे कुंथुनाथ भगवन्! आप सब जीवोंको आश्रय लेनेयोग्य हैं। इस संसारमें जो जीव आपको नमस्कार करता है वह चाहे अति निकृष्ट हो तथापि आपको नमस्कार करनेमात्रसे ही वह महाप्रभु अर्थात् सबका स्वामी हो जाता है। अतएव ऐसा कौनसा मूर्ख है जो आपको नमस्कार न करे अथवा ऐसा कौनसा बुद्धिमान् है जो आपको नमस्कार न करे। अर्थात् सब लोग आपको नमस्कार करते ही हैं ॥ ८२ ॥

गतप्रत्यागतार्द्धभागः।

नतयात विदामीश शमी दावितयातन ।
रजसामंत सन् देव वंदेसंतमसाजर ॥ ८३ ॥

नतेति—गतप्रत्यागतार्द्ध इत्यर्थः । नतैः प्रणतैः यातः गम्यः नतयातः तस्य सम्बोधन हे नतयात । विदां ज्ञानिनां ईश स्वामिन्। शमी उपशान्तः। दावित उपतापित यातनं दुःखं येनासौ दावितयातनः तस्य सम्बोधनं हे दावितयातन । रजसां पापानां अन्त विनाशक। सन् भवन् । देव परमात्मन् । त्वामहमित्यध्याहार्य्यः सामर्थ्यलभ्यो वा । वंदे स्तौमि । न विद्यते सतमस अज्ञानं यस्यासौ असंतमसः तस्य सम्बोधन हे असतमस । अजर जातिजरामृतिरहित । किमुक्तं भवति—हे कुंथुस्वामिन् नतयात विदामीश दावितयातन रजसामंत देव असतमस अजर शमी शान्तः सन् त्वा वन्देहमिति सम्बन्धः ॥८३॥

हे कुंथुनाथ! आपको वही जान सकता है जो आपको नमस्कार करता रहता है, आप ज्ञानियोंके भी ईश्वर है, सदा शान्तरूप हैं, दुःखोंको दूर करने वाले और पापोंको नाश करने-

वाले हैं। आप जरारहित हैं, अज्ञानरहित हैं। हे परमात्मन् ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ८३ ॥

बहुक्रियापदद्वितीयपादमध्ययमकातालुव्यञ्जनावर्णस्वर
गूढद्वितीयपादसर्वतोभद्रः ।

पारावाररवारापारा क्षमाक्ष क्षमाक्षरा ।
वामानाममनामावारक्ष मर्द्धमक्षर ॥ ८४ ॥

परेति—बहुक्रियापदद्वितीयपादमध्ययमकातालुव्यञ्जनावर्णस्वरगूढद्वितीयपादसर्वतोभद्रः । बहुक्रियापदानि—अम अव आरक्ष । द्वितीय पादे क्षमाक्ष इति मध्ये मध्ये आवर्त्तितम् । सर्वाणि अतालुव्यञ्जनानि । अवर्णस्वराः सर्वेपि नान्यः स्वरः । द्वितीयपादे यान्यक्षराणि तान्यन्येषु त्रिषु पादेषु सन्ति यतः ततो गूढद्वितीयपादः सर्वैः प्रकारैः पाटः समान इति सर्वतोभद्रः ।

पारावारस्य समुद्रस्य रवो ध्वनिः पारावाररवः पारावाररवं इयर्त्ति गच्छतीति पारावाररवारः तस्य सम्बोधनं पारावाररवार समुद्रध्वनिसदृशवाणीक । न विद्यते पारं अवसानं यस्याः सा अपारा अलब्धपर्यन्ता । क्षमां पृथिवीं अक्ष्णोति व्याप्नोतीति क्षमाक्षः ज्ञानव्यात सर्वमेयः तस्य सम्बोधनं हे क्षमाक्ष । क्षमा सहिष्णुता सामर्थ्यं वा । अक्षरा अविनस्वरा । वामानां पापानाम् । अमन खनक । अम प्रीणय । अव शोभस्व । आरक्ष पालय । मा अस्मदः इवन्तस्य रूपम् । हे ऋद्ध वृद्ध । ऋद्धं वृद्धम् । न क्षरतीत्यक्षरः तस्य सम्बोधन हे अक्षर । समुदायार्थः—हे कुंथुनाथ, पारावाररवार, क्षमाक्ष, वामानामन, ऋद्ध, अक्षर, ते क्षमा अक्षरा अपारा यतः ततः मा ऋद्धं अम अव आरक्ष । अतिभक्तिकरमं वचनमेतत् ॥ ८४ ॥

हे कुंथुनाथ ! आपकी दिव्यध्वनि समुद्रगर्जनके समान अतिशय गंभीर है । आप संपूर्ण लोकाकाश तथा अलोकाकाशके जाननेवाले हो, पापोंके नाश करनेवाले हो, वृद्ध हो, क्षयरहित हो। हे देव ! आपकी क्षमा अपार और अविनाशीक है। इसलिये हे प्रभो ! मुझ वृद्धको भी प्रसन्न कीजिये, सुशोभित कीजिये, तथा पालन कीजिये ॥ ८४॥

इति कुंथुनाथस्तुतिः।

गतप्रत्यागतपादपादाभ्यासयमकाक्षरद्वयविरचितश्लोकः।

वीरावारर वारावी वररोरुरुरोरव।
वीरावाररवारावी वारिवारिरि वारि वा ॥ ८५॥

वीरेति—पादे पादे यादृग्भूतः पाठः क्रमेण विपरीततोपि तादृग्भूत एव। प्रथमपादः पुनरावर्त्तित। रेफवकारावेव वर्णौ नान्ये वर्णा यतः।

विरूपा ईरा गतिः वीरा तां वारयति प्रच्छादयतीति कर्त्तरि क्विप् वीरावार् तस्य सम्बोधन हे वीरावार् कुगतिनिवारण। अर अष्टादशतीर्थंकर। वारान् भाक्तिकान् अवति पालयतीत्येवशीलः वारावी भाक्तिकजनरक्षक इत्यर्थः। वर इष्टफल राति ददातीति वररः वरद इत्यर्थः तस्य सम्बोधन हे वरर। उरुर्महान्। उरोर्महतः महतोपि महान् भगवानित्यर्थः। अव रक्ष। हे वीर शूर। अवाररवेण अप्रतिहतवाण्या आरौति ध्वनयति भव्यान् प्रतिपादयतीत्येवंशीलः अवाररवारावी अप्रतिहतवाण्या वचनशीलः इत्यर्थः। कथमिव वारि व्यापि। वारि पानीयम्। वारि च तत् वारि च तत वारिवारि वारिवारि राति

ददातीति वारिवारिराः तस्मिन् वारिवारिरि सर्वव्यापिनीरदे । वारि वा जलमिव । वा शब्दः इवार्थे दृष्टव्यः । किमुक्तं भवति— हे अस्तीर्थेश्वर वीरावार वरर वारावी त्वं उरोरपि उरः त्वं तथा अवारस्वारावी त्वं यथा वारिवारिरि वारि वा यतः ततः अव । सामान्यवचनमेतत् मा अव अन्यांश्च पालय ॥ ८५ ॥

हे अरनाथ ! भगवन् आप नरकादि कुगतियोंको निवारण करनेवाले हैं, भक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले हैं, ईप्सित फलको देनेवाले हैं, बड़ोंसे भी बड़े हैं, शूर है। हे देव ! जैसे सम्पूर्ण आकाशमंडलमें व्याप्त होनेवाले बादलमें सर्वत्र जल रहता है उसी प्रकार आपकी दिव्यध्वनि भी सर्वत्र अप्रतिहत है। कहीं रुक नहीं सकती न कुंठित ही होती है। हे प्रभो ! आप मेरी भी रक्षा कीजिये तथा औरोंकी भी रक्षा कीजिये ॥ ८५ ॥

अनुलोमप्रतिलोमश्लोकः ।

रक्ष माक्षर वामेश शमी चारुरुचानुतः ।
भो विभोनशनाजोरुनम्रेन विजरामय ॥ ८६ ॥

रक्षमेति—क्रमपाठेनैकश्लोकः विपरीतपाठेनाप्यपरश्लोकः । अयंन्त्विनः ।

रक्ष पालय । मा अस्मदः इदन्तस्य रूपम् । अक्षर अनश्वर । वामेश प्रधानस्वामिन् । शमी उपशान्तः त्वमिति सम्बन्धः । चारुरुचानुतः शोभनभक्तिना पुरुषेण प्रणुतः । भो विभो हे त्रैलोक्यगुरो । अनशन अनाहार अविनाश इति वा । अज परमात्मन् उरवः महान्तः नम्राः नमनशीलाः यस्यासावुरुनम्रः तस्य सम्बो-

घनं हे उरुनम्र। इन स्वामिन्। विजरामय विगतवृद्धत्वव्याध।
किमुक्तं भवति—हे अर अक्षर वामेश शमी त्वं चारुरुचानुतः
भो विभो अनशन अज उरुनम्र इन विजरामय मा रक्ष॥ ८६॥

हे अरनाथ! आप विनाशरहित हैं, इन्द्रोंके भी इन्द्र हैं,
सदा शान्तरूप हैं, तीनो लोकोंके गुरु हैं, आहाररहित हैं,
जरा व्याधि और जन्म रहित हैं। हे परमात्मन् बडे २ पुरुष
भी आपको नमस्कार करते हैं बड़े २ भक्तजन भी आपको प्रणाम
करते हैं। हे विभो आप सबके स्वामी हैं इसलिये मेरी भी
रक्षा कीजिये॥ ८६॥

अनुलोमप्रतिलोमश्लोकः।

यमराज विनम्रेन रुजोनाशन भो विभो।
तनु चारुरुचामीश शमेवारक्ष माक्षर॥ ८७॥

यमेति—यमराज व्रतस्वामिन्। यमैः राजते शोभते इति वा।
विनम्राः विनमनशीलाः इनाः इन्द्रार्कादयो यस्यासौ विनम्रेनः तस्य
सम्बोधनं विनम्रेन। रुजोनाशन व्याधिविनाशक। भो विभो
हे स्वामिन्। तनु कुरु विस्तारय वा। चारुरुचामीश शोभनदीप्तीनां
प्रभो। शमेव सुखमेव। आरक्ष पालय। मा अस्मदः इवन्तस्य रूपम्।
अक्षर अविनाश। समुदायार्थः-हे अर यमराज विनम्रेन रुजोनाशन भो
विभो चारुरुचामीश शोभनदीप्तानां प्रभो अक्षर शमेव तनु मा आरक्ष।
सुखमत्यर्थं कुरु मां पालयेत्यर्थः॥ ८७॥

हे विभो! आप व्रतियोंके भी नायक हैं। इन्द्र चन्द्रादिक
भी आपको नमस्कार करते हैं। आप सम्पूर्ण व्याधियोंके नाश
करनेवाले हैं, अविनश्वर हैं तथा सुन्दर शोभाओंके स्वामी हैं।

हे स्वामिन्! यह मोक्षरूप सुख मुझे भी दीजिये तथा मेरी रक्षा भी कीजिये ॥ ८७ ॥

गतप्रत्यागतभागः ।

नय मा स्वर्य वामेश शमेवार्य स्वमाय न
दमराजर्त्तवादेन नदेवार्त्तजरामद ॥ ८८ ॥

नयेति—नय प्रापय । मा अस्मदः इवन्तस्य रूपम् । सु शोभनः अर्यः स्वामी स्वर्यः तस्य सम्बोधनं हे स्वर्य सुस्वामिन् । वामेश प्रधानेश । शमेव सुखमेव । आर्य साधो । सुष्ठु अमायः स्वमायः तस्य सम्बोधनं हे स्वमाय । न नत्वर्थे । अथवा आ समंतात् अर्यते गम्यते परिच्छिद्यते यः स आर्यः अर्थ इत्यर्थः, आर्यस्य स्वः आत्मा आर्यस्वः, त मिमीते इति कर्त्तरि कः, आर्यस्वमं अयन ज्ञान यस्यासौ आर्यस्वमायनः स्वस्वरूप-प्रकाशक इत्यर्थ', तस्य सम्बोधनं हे आर्यस्वमायन । दमस्य इन्द्रिय-जयस्य राजा स्वामी दमराजः । टःसान्तः । अथवा दमेन राजत इति दमराजः तस्य सम्बोधनं हे दमराज । ऋतं सत्यं वादः कथनं यस्यासौ ऋतवादः तस्य सम्बोधनं हे ऋतवाद सत्यवाक्य । इन प्रभो भास्वन् । देवः क्रीडा, आर्त्त पीडा, जरा वृद्धत्वं, मदः कामोद्रेकः । देवश्च आर्त्त च जरा च मदश्च देवार्त्तजरामदाः न विद्यन्ते देवार्त्तजरामदाः यस्यासौ नदेवार्त्तजरामदः । नञ् प्रतिरूपकोयं झि संज्ञको नकारः अतः अनादेशो न भवति । तस्य सम्बोधनं हे नदेवार्त्तजरामद । एतदुक्तं भवति—हे अरनाथ स्वर्य वामेश आर्य स्वमाय आर्यस्वमायन वा दमराज ऋतवाद इन नदेवार्त्तजरामद ननु मा शमेव नय सुखमेव प्रापय । मा न दुःखमित्युक्त भवति ॥ ८८ ॥

हे अरनाथ! आप उत्कृष्ट नायक हैं तथा सबके स्वामी

है। आपका ज्ञान भी स्वपर प्रकाशक है । हे स्वामिन् ! इन्द्रियोंके जीतनेवालोंमें आप श्रेष्ठ है , अनेकान्तात्मक सत्यस्वरूपका निरूपण करनेवाले हैं, पीड़ा, क्रीड़ा, जरा, कामोद्रेक आदि व्याधियोंसे रहित हैं । हे प्रभो ! मुझे भी इन पीड़ादिक दुःखोंसे निकालकर सुखी कीजिये ॥ ८८ ॥

यथेष्टैकाक्षरान्तरितमुरजबन्धः ।

वीरं मा रक्ष रक्षार परश्रीरदर स्थिर ।

धीरधीरजरः शूर वरसारर्द्धिरक्षर ॥ ८९ ॥

वीरेति—इष्टपादेन चतुर्णां मध्ये र वर्णान्तरितेन मुरजबन्धो निरूपयितव्यः ।

वीरं शूर । अथवा विरूपा इरा गतिर्यस्यासौ वीरः । अथवा व्या इच्छाया ईरा यस्यासौ वीरः तं वीरम् । मा अस्मदः इबन्तस्य रूपम् । रक्ष पालय । रक्षां क्षेमं राति ददाति रक्षारः तस्य सम्बोधन हे रक्षार अभयद । परा श्रेष्ठाश्रीर्लक्ष्मीर्यस्यासौ परश्रीः त्वमिति सम्बन्ध । अदर अभय । स्थिर अचल । धीरधीः गम्भीरबुद्धिः अगाधधिषण इत्यर्थ । अजरः जरामरणरहित । शूर वीर । वरा श्रेष्ठा सारा अनश्वरी ऋद्धिः विभूतिर्यस्यासौ वरसारर्द्धिः । अक्षर क्षयरहित । एतदुक्तं भवति—हे रक्षार परश्रीस्त्वं अदर धीरधीस्त्वं स्थिर अजरस्त्व शूर वरसारर्द्धिस्त्व अक्षर वीरं मा रक्ष ॥ ८९ ॥

हे अरनाथ ! आप प्राणीमात्रका कल्याण करनेवाले हैं, समवसरणादि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे सुशोभित हैं, सदा निर्भय हैं, अचल हैं, अगाध बुद्धिके धारक हैं, जरामरणरहित हैं, क्षय रहित हैं, वीर हैं, तथा अविनाशीक और उत्कृष्ट अनन्त चतुष्टय

रूप विभूतिसे विभूषित हैं । हे प्रभो ! मैं भी वीर अर्थात् नर नारकादि अनेक पर्यायोंमें परिभ्रमण करनेवाला हूं अतएवं इस परिभ्रमणसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ ८९ ॥

इत्यरनाथस्तुतिः ।

अर्द्धभ्रमः ।

आस यो नतजातीर्य्यां सदा मत्वा स्तुते कृती ।
यो महामतगोतेजा नत्वा मल्लिमितः स्तुत ॥९०॥

आसेति—आस अस्यतिस्म । यः यदो वान्तस्य रूपम् । नतस्य प्रणतस्य जातिः उत्पत्तिः नतजातिः नतजातेरीर्या प्राप्तिः नतजातीर्या तां नतजातीर्याम् । सदा सर्वकालम् । मत्वा ज्ञात्वा । अथवा क्तनिबन्तोयं प्रयोगः, मत्वा ज्ञातेत्यर्थः । स्तुते नुते पूजिते । कृती अनश्वरकीर्त्तिः तीर्थंकरकर्मा पुण्यवानित्यर्थः । यः यदो रूपम् । मतं आगमः, गौर्वाणी, तेजः केवलज्ञानं, द्वन्द्वः, महान्तः मतगोतेजांसि यस्यासौ महामतगोतेजाः । नत्वा स्तुत्वा तमिति सम्बन्धः । तं मल्लि एकोनविंशतीर्थकरम् । इतः प्राप्तः । अथवा इतः ऊर्ध्वं अरस्तुतेरूर्ध्वम् । स्तुत नुत । स्तु इत्यस्य धोः लोडन्तस्य रूपं बहुवचनान्तम् । एतदुक्तं भवति—यः मल्लिः नतजातीर्यां आस सदा मत्वा स्तुते सति कृती यश्च महामतगोतेजाः तं मल्लिनाथं नत्वा इतः स्तुत ॥ ९० ॥

हे मल्लिनाथ ! जो पुरुष आपको नमस्कार करता है आप उसके सम्पूर्ण जन्ममरणादिक रोग दूर कर देते हो । आप सदा ज्ञाता हो । आपका यह आगम, आपकी यह ध्वनि, आपका यह केवलज्ञान अतिशय विशाल है । हे प्रभो ! जो आपकी स्तुति करता है वह अवश्य ही महा पुण्यवान् अर्थात्

तीर्थंकर हो जाता है। हे भव्यजन हो तुम भी ऐसे इन मल्लि-
नाथको नमस्कार कर इनकी स्तुति करो ॥ ९० ॥

इति मल्लिनाथस्तुतिः ।

निरौष्ठ्ययथेष्टैकाक्षरान्तरितमुरजबन्धः ।

ग्लानं चैनश्च नः स्येन हानहीन घनं जिन ।
अनन्तानशन ज्ञानस्थानस्थानतनन्दन ॥ ९१ ॥

ग्लानमिति—ग्लानं च ग्लानिं च । एनश्च पापं च । नः अस्मा-
कम् । स्य विनाशय । हे इन स्वामिन् । हानहीन क्षयरहित । घनं
निविडम् । जिन परमात्मन् । अनन्त अमेय अलब्धगुणपर्यन्त । अनशन
अविनाश निराहार इति वा । ज्ञानस्थानस्थ केवलज्ञानधामस्थित । आन-
तनन्दन प्रणतजनवर्द्धन । उत्तरश्लोके मुनिसुव्रतग्रहणं तिष्ठति तेन सह
सम्बन्धः । हे मुनिसुव्रत इन हानहीन जिन अनन्त अनशन ज्ञानस्था-
नस्थ आनतनन्दन ग्लानं च एनश्च नः स्य ॥ ९१ ॥

हे मुनिसुव्रत ! आप सबके स्वामी हो, क्षयरहित हो,
परमात्मा हो, अविनश्वर हो । अनन्त गुणोंसे विभूषित हो,
सदा केवलज्ञानरूपी स्थानमें रहते हो । आपको जो प्रणाम
करता है उसको सदा बढ़ाते रहते हो । हे प्रभो ! मेरी भी यह
संसारसम्बन्धी ग्लानि और पाप दूर कर दीजिये ॥ ९१ ॥

अर्द्धभ्रमः ।

पावनाजितगोतेजो वर नानाव्रताक्षते ।
नानाश्चर्य सुवीतागो जिनार्य मुनिसुव्रत ॥ ९२ ॥

पावनेति—पावन पवित्र । गौश्च तेजश्च गोतेजसी, न जिते गोतेजसी वाणीज्ञाने यस्यासावजितगोतेजाः तस्य संबोधनं हे अजितगोतेजः । वर श्रेष्ठ । नानाव्रत नानानुष्ठान । छद्मस्थावस्थायामाचरणकथनमेतत् । अक्षते अक्षय । नानाभूतानि आश्चर्याणि ऋद्धयः प्रातिहार्याणि वा यस्यासौ नानाश्चर्यः, तस्य सम्बोधनं हे नानाश्चर्य । सुष्ठु वीतं विनष्टं आगः पापं अपराधो यस्यासौ सुवीतागाः तस्य सम्बोधनं हे सुवीतागः । जिन जिनेन्द्र । आर्य स्वामिन् । मुनिसुव्रत विंशतितमतीर्थंकर । अतिक्रान्तेन क्रियापदेन स्य इत्यनेन सह सम्बन्धः । एतदुक्तं भवति—हे पावन अजितगोतेजः वर नानाव्रत अक्षते नानाश्चर्य सुवीतागः जिन आर्य मुनिसुव्रत नः अस्माकं ग्लानं एनश्च स्य विनाशय ॥ ९२ ॥

हे भगवन् ! आप परम पवित्र हैं । आपकी दिव्यध्वनि तथा आपका यह केवलज्ञान अजेय है । इन्हें कोई जीत नहीं सकता । आप सर्वोत्कृष्ट हैं । छद्मस्थ अवस्थामें आपने अनेक घोर तपश्चरण किये हैं । आप अक्षय हैं, अष्ट प्रातिहार्यादि अनेक ऋद्धियोंके स्वामी हैं, अत्यन्त निष्पाप हैं, जिनेन्द्र हैं । भो मुनिसुव्रत ! हे स्वामिन् ! मेरी भी यह संसार सम्बन्धी ग्लानि और पाप दूर कर दीजिये ॥ ९२ ॥

इति मुनिसुव्रतस्तुतिः ।

गतप्रत्यागतपादयमकाक्षरद्वयविरचितसन्निवेशविशेष
समुद्गतानुलोमप्रतिलोमश्लोकयुगलश्लोक ।

नमेमान नमामेनमानमाननमानमा ।
मनामोनु नुमोनामनमनोमम नो मन ॥ ९३ ॥

नमेति—गतप्रत्यागतपादयमको नकारमकाराक्षरद्वयविरचितश्लोक-द्वयं श्लोकयुगलमित्यर्थः। अन्यद्विशेषणं मुखशोभनार्थम्।

हे नमे एकविंशतीर्थंकर। अमान अपरिमेय। नमाम प्रणमाम त्वामित्यध्याहार्यमर्थसामर्थ्याद्वा लभ्यम्। इन स्वामिनम्। आनानां प्राणिनां माननं प्रबोधकं मानं विज्ञानं यस्यासौ आनमाननमानः तं आनमाननमानं भव्यप्राणिप्रबोधकविज्ञानमित्यर्थः। आन इति अन श्वस प्राणने इत्यस्य धोः घञन्तस्य रूपम्। माननमिति मन ज्ञाने इत्यस्य धोः णिना युडन्तस्य रूपम्। आमनामः आसमन्तात् चिन्तयामः। मन अभ्यासे इत्यस्य धोः लडन्तस्य रूपम्। अनु पश्चात् नुमः वन्दामहे। अनामन अ—नमनप्रयोजक मनः चित्तं यस्यासौ अनामनमना. तस्य सम्बोधनं हे अनामनमनः बलात्कारेण न परान्नामयतीत्यर्थः, अनेन वीतरागत्वं ख्यापितं भवति। अथवा नामनानि नमनशीलानि मनासि चित्तानि यस्माद् भवन्ति असौ नामनमनाः तस्य सम्बोधनं हे नामनमनः। अथवा नामनं स्तुतिनिमित्तं मनः चित्तं यस्मादसौ नामनमनाः तस्य सम्बोधनं हे नामनमनः। अमम हे अमोह। नः अस्मान्। मन अ-भ्यासय चिन्तय इत्यर्थः 'मनअभ्यासे इत्यस्य धोः लोडन्तस्य रूपम्'। एतदुक्तं भवति—हे नमे अमान अमम अनामनमनः त्वां इनं आन माननमानं आमनामः नमाम अनु नुमः यस्मात्तस्मात् नः अस्मान् मन चिन्तय॥ ९३॥

हे नमिनाथ! आप हमारे ऐसे अल्पज्ञानियोंके अगोचर हैं। आपका यह विज्ञान भव्यजीवोंको सदा प्रबोध करने-वाला है। आप वीतराग हैं इसीलिये कभी किसीसे बलात्कार नमस्कारादि नहीं कराते। यह संसार आपको देखकर स्वयं ही नमस्कार करता है तथा स्वयं स्तुति करने लगता है। हे

स्वामिन् ! आप मोहरहित हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूं। नमस्कार करता हूं। मुझे सदा स्मरण रखिये॥ ९३॥

न मे माननमामेन मानमाननमानमा।

मनामो नु नु मोनामनमनोम मनोमन॥ ९४॥

नमेमेति—न प्रतिषेधवचनम्। मे मम। माननं पूजनं प्रभुत्वं स्वातन्त्र्यमित्यर्थः। आमेन रोगेण संसारदुःखेन कर्मणा इत्यर्थः। किं-विशिष्टेनामेन मानमा मानं ज्ञानं मिनाति हिंसयतीति मानमाः तेन मानमा। अननं प्राणनं जीवन मिनाति हिंसयतीति अननमाः तेन अननमा। आसमन्तात् नमन्तीत्यानमाः स्तुतेः कर्तारः। आनमानां अमनं रोगः व्याधिः आनमामनं तत् अमति रुजति भनक्तीति 'कर्मण्यण्' आनमामनामः त्वमिति सम्बन्धः। नु वितर्के। अन्योपि नु वितर्के। मा लक्ष्मीः तया ऊनाः रहिताः मोनाः मोनानां आमः रोगः मोनामः तं नामयतीति मोनामनमनः त्वमिति सम्बन्धः। अम गच्छ। मे इत्यध्याहार्यः। मनः चित्तम्। अमन कान्त कमनीय। एतदुक्तं भवति-आनमामनामो नु त्वं यस्मात् मे मम माननं नास्ति आमेन किं विशि-ष्टेन मानमा पुनरपि अननमा॥ ९४॥

हे भगवन् ! जो आपकी स्तुति करता है आप उसके सम्पूर्ण रोग शोकादिक दूर कर देते हो. जो विचारे गरीब हैं ज्ञानशून्य हैं उन्हें आप ज्ञानी और नीरोग बना देते हो। आप स्वयं अतिशय मनोहर हो। हे प्रभो ! ज्ञानको घात करनेवाले, जीवके शुद्धस्वरूपको छिपानेवाले और संसारमें अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले इन कर्मोंने मेरा सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य हरण करलिया

है। हे देव ! यह मेरी स्वतंत्रता मुझे देनेकेलिये आप मेरे हृदयमे प्रवेश कीजिये ॥ ९४ ॥

अनुलोमप्रतिलोमसकलश्लोकः ।

नर्दयाभर्त्तवागोद्य द्य गोवार्त्तभयार्दन ।
तमिता नयजोतानुनुताजेय नतामित ॥ ९५ ॥

नर्दयेति—गतप्रत्यागतार्द्ध इत्यर्थः । हे नः पूज्यपुरुष। दया एव आभा रूप यस्यासौ दयाभः तस्य सम्बोधनं हे दयाभ दयारूप । ऋता सत्या वाक् वाणी ऋतवाक् सत्यवचनम्, आसमन्तात् उद्यत इत्योद्यम्, ऋतवाचा सत्यवाण्या ओद्यं आकार यस्यासौ ऋतवागोद्यः तस्य सम्बोधनं हे ऋतवागोद्य । द्य खण्डय । गौर्वाणी, वार्त्तैव वार्त्त, गोः वार्त्त गोवार्त्त वचनवार्त्ता । भयानां अर्दनः विनाशकः भयार्दनः । गोवार्त्तेन भयार्दनः गोवार्त्तभयार्दनः अथवा गोवार्त्तेन भयार्दनं यस्मादसौ गोवार्त्तभयार्दनः तस्य सम्बोधनं हे गोवार्त्तभयार्दन वचनवार्त्तया भयनाशक । तामिताः खेदरूपाणि दुःखानीत्यर्थः नयैर्जयनशीलः नयजेता त्वमिति सम्बन्धः । हे अनुनुत सुपूजित इत्यर्थः। अजेय अपराजेय अजय्य इत्यर्थः। नताः प्रणताः अमिता अपरिमिताः इन्द्रादयो यस्यासौ नतामितः तस्य सम्बोधनं हे नतामित । एतदुक्तं भवति—हे नः, दयाभ, ऋतवागोद्य, गोवार्त्तभयार्दन अनुनुत अजेय नतामित नयजेता त्व यतस्ततस्त्व तमिताः दुःखानि द्य खण्डय । अस्माकं अनुक्रमपि लभ्यते ॥ ९५ ॥

हे नमिनाथ ! आप पूज्य पुरुष हैं, दयारूप हैं। अनेकान्तरूप सत्यावाणीके द्वारा ही आपका स्वरूप जाना जाता है । आपकी कथामात्र कहनेसे ही संसारिक सम्पूर्ण भय नष्ट हो जाते

हैं । निश्चय व्यवहारादिक नयोंसे आपने यह सम्पूर्ण जगत जीतलिया है । सौधर्मादिक अनेक इन्द्र आपको नमस्कार करते हैं । हे अजेय ! हे महापूज्य मेरे जन्म मरणादिक दुःखोंको दूर करदीजिये ॥ ९५ ॥

अनुलोमप्रतिलोमश्लोकः

हतभीः स्वय मेध्याशु शं ते दातः श्रिया तनु ।
नुतया श्रित दान्तेश शुद्ध्यामेय स्वभीत ह ॥९६॥

हतेति—गतप्रत्यागतैकश्लोक इत्यर्थः । हतभीः विनष्टभयः त्वं । स्वयः शोभनः अयो यस्यासौ स्वयः तस्य सम्बोधनं स्वय । मेध्य पूत । आशु शीघ्रम् । शं सुखम् । ते तव । दातः दानशील: । श्रिया लक्ष्म्या । तनु कुरु देहि वितर विस्तारय इति पर्यायाः । नुतया पूजितया । श्रित सेव्य । दान्तेश मुनीश । शुद्ध्या केवलज्ञानेन । अमेय अपरिमेय । सुष्ठु अभीतः स्वभीतः तस्य सम्बोधनं स्वभीत अनन्तवीर्य । ह क्षि सं-शकः । समुदायार्थः—हे नमे यतः त्वं हतभीः स्वय मेध्य दातः श्रिया नुतया श्रितः दान्तेश शुद्ध्यामेय स्वभीत ते तव यत् शं सुखं तत् तनु कुरु देहि ह स्फुटम् ॥ ९६ ॥

हे नमिनाथ ! आप निर्भय हो, महापुण्यवान् हो, पवित्र हो, मुनियोंके भी स्वामी हो । हे दानशील ! आपका केवलज्ञान अनन्त है, बल भी अनन्त है । अतिशय उत्कृष्ट लक्ष्मी भी आपकी सेवा करती है । हे देव ! आपमें जो अनंत सुख है वह मुझे भी शीघ्र दीजिये ॥ ९६ ॥

इति नमिनाथस्तुतिः ।

अक्षरश्लोकः ।

मानोनानामनूनानां मुनीनां मानिनामिनम् ।
मनूनामनुनौमीमं नेमिनामानमानमन् ॥ ९७ ॥

मानोनेनि—मकारनकाराक्षरैर्विरचितो यतः । मानोनाना गर्वहीनानां । अनूनानां अहीनानां चारित्रसम्पूर्णानामित्यर्थः । मुनीनां साधूनां । मानिनां पूजितानां । इनं स्वामिनं । मनूनां ज्ञानिनां । मनु शब्दोऽयं मन ज्ञाने इत्यस्य धोः औणादिकत्वान्तस्य रूपम् । अनुनौमि सुष्ठु स्तौमि । इमं प्रत्यक्षवचनं । नेमिनामानं अरिष्टनेमिनाथम् । आनमन् प्रणमन् । अहमिति संबन्धः । समुदायार्थः—इमं नेमिनामानं किं विशिष्टं इन स्वामिन केषा मुनीना किं विशिष्टानां मानोनाम् अनूनानां मानिनां मनूनां आनमन्नहं अनुनौमि ॥ ९७ ॥

हे नेमिनाथ ! आप गर्वरहित, पूर्ण चारित्रको धारण करनेवाले, महापूज्य और महाज्ञानी मुनियोंके भी स्वामी हैं। अतएव आपको बारबार प्रणाम करता हूं तथा आपकी यह सुंदर स्तुति करता हूं ॥ ९७ ॥

अनुलोमप्रतिलोमैकश्लोकः ।

तनुतात्सद्यशोमेय शमेवार्य्यवरो गुरु ।
रुगुरो वर्य्य वामेश यमेशोद्यत्सतानुत ॥ ९८ ॥

तनुतादिति—गतप्रत्यागत इत्यर्थः । तनुतात् कुरुतात् । सद्यशः शोभनकीर्ते । अमेय अपरिमेय । शमेव सुखमेव । आर्याणा प्रधानानां वरः श्रेष्ठः आर्यवरः त्वमिति सम्बन्धः । गुरु महत् सुखेन सम्बन्धः । रुचा दीप्त्या उरुः महान् रुगुरुः तस्य सम्बोधनं हे रुगुरो दीप्त्या

महत् । वर्य प्रधान । वामेश शोभनेश । यमेद्य व्रतस्वामिन् उद्यत्सतानुत उद्योगवता पण्डितजनेन नुत स्तुत । एवं सम्बन्धः कर्तव्यः हे नेमिनाथ सद्यशः अमेय स्वगुरो वर्य वामेश यमेश उद्यत्सतानुत आर्यवरस्तं गुरु शमेव तनुतात् ॥ ९८ ॥

हे नेमिनाथ! आपकी यह सुन्दर कीर्त्ति संसारभरमें व्याप्त है । आपकी कान्ति भी सर्वोत्कृष्ट है । आप श्रेष्ठोंमें भी उत्तम श्रेष्ठ हैं । व्रतियोंके नायक हैं । हे वर्य यह सब स्वामित्व आप को ही शोभायमान होता है । वास्तवमें आप अल्पज्ञानियोंके अगोचर हैं । बड़े बड़े पंडितजन भी आपको नमस्कार करते हैं । हे देव! वह मोक्षरूप सर्वोत्कृष्ट सुख मुझे भी दीजिये ९८

इति नेमिनाथस्तुतिः ।

मुरजः ।

जयतस्तव पार्श्वस्य श्रीमद्भर्तुः पदद्वयम् ।
क्षयं दुस्तरपापस्य क्षमं कर्तुं ददज्जयम् ॥९९॥

जयेति—जयतः जयं कुर्वतः । तव ते । पार्श्वस्य त्रयोविंशतितीर्थंकरस्य । श्रीमत् लक्ष्मीमत् । भर्तुः भट्टारकस्य स्वामिनः । पदद्वयं पदयुगलम् । क्षयं विनाशम् । दुस्तरपापस्य अतिगहनपापस्य । क्षमं समर्थम् । कर्तुं विधातुम् । ददज्जयं विधदद्विजयम् । समुदायार्थः—जयतस्तव पार्श्वस्य भर्तुः पदद्वयं श्रीमत् ददत् जयं दुस्तरपापस्य क्षयं कर्तुं क्षमम् । उत्तरश्लोकेन सम्बन्धः ॥ ९९ ॥

हे प्रभो ! हे पार्श्वनाथ आप मोहादिक सम्पूर्ण अंतरंग शत्रुओंको जीतनेवाले हो, सबके स्वामी हो । हे देव ! आपके चरणकमल अतिशय शोभायमान हैं । सर्वत्र विजय देनेवाले

हैं। अतिशय गहन पापोंको भी नाश करनेकेलिये समर्थ हैं। हे भगवन् ! आपके ऐसे चरणकमल मेरा अज्ञानांधकार दूर करो ॥ ९९ ॥

गूढतृतीयचतुर्थानन्तराक्षरद्वयविरचितयमकानन्तरपादमुरजबन्धः।

तमोत्तु ममतातीत ममोत्तममतामृत।

ततामितमते तातमतातीतमृतेमित ॥ १०० ॥

तमोत्त्विति—तव पार्श्वस्य इत्येतद्द्वयमनुवर्तते। तमोत्तु तमो भक्षयतु अज्ञानं निराकरोत्वित्यर्थः। ममतातीत ममत्वातिक्रान्त। मम आत्मनः अस्मदः तान्तस्य रूपं। उत्तमं प्रधानं मतामृतं आगमामृतं यस्यासौ उत्तममतामृतः, तस्य संबोधनं हे उत्तममतामृत प्रधानागमामृत। तता विशाला अमिता अपरिमिता मतिर्ज्ञानं यस्यासौ ततामितमतिः तस्य सम्बोधनं हे ततामितमते विशालापरिमितज्ञान। तात इति मतः तातमतः श्रेण्यादिकृतैरिति सविधि, तात इति औणादिकः प्रयोगः तस्य सम्बोधनं हे तातमत। अतीता अतिक्रान्ता मृतिः मरणं यस्यासौ अतीतमृतिः तस्य सम्बोधनं हे अतीतमृते अतिक्रान्तमरण। अमित अपरिमित। किमुक्तं भवति—हे पार्श्वभट्टारक ममतातीत उत्तममतामृत ततामितमते तातमत अतीतमृते अमित तव पदद्वय मम तमोत्तु भक्षयतु ॥ १०० ॥

हे पार्श्वनाथ ! आप ममत्वरहित हैं। आपका यह आगमरूपी अमृत सर्वोत्कृष्ट है। आपका केवलज्ञान भी अतिशय विशाल और अपरिमित है। आप सबके बंधु हैं। जन्मजरामरणरहित हैं तथा अपरिमित हैं। हे भगवन् ! आपके ये चरणयुगल मेरा अज्ञानांधकार दूर करो ॥ १०० ॥

मुरजः ।

स्वचित्तपटयालिख्य जिनं चारु भजत्ययम् ।
शुचिरूपतया मुख्यमिनं पुरुनिजश्रियम् ॥१०१॥

स्वचित्तेति—स्वचित्तपटे आत्मीयचेतःपट्टके । आलिख्य लिखित्वा । जिनं पार्श्वनाथम् । चारु शोभनं यथा भवति तथा क्रियाविशेषणमेतत् । भजति सेवते । अयं जनः आत्मानं कथयति । शुचिरूपतया शुद्धस्वरूपत्वेन । मुख्यं प्रधानं । इनं स्वामिनं । पुरु महती निजा आत्मीया श्रीर्लक्ष्मीर्यस्यासौ पुरुनिजश्रीः अतस्तं पुरुनिजश्रियं महदात्मीयलक्ष्मीम् । समुदायार्थः—जिनं पार्श्वनाथं इनं पुरुनिजश्रियं मुख्यं आलिख्य स्वचित्तपटे अयं जनो भजति । किं निमित्तं ? शुचिरूपतया शुद्धस्वरूपमितिकृत्वा ॥ १०१ ॥

हे पार्श्वनाथ ! आपकी आत्मीय अनंतचतुष्टयरूप शोभा अतिशय विशाल है । आप सबके स्वामी हो । सबमें श्रेष्ठ हो । हे भगवन् यह दास आपको केवल शुद्धस्वरूप मानकर और सुन्दररीतिसे अपने हृदयपटलमें लिखकर अर्थात् अपने हृदयपटलमें आपको विराजमानकरके आपकी सेवा करता है ॥ १०१ ॥

इति पार्श्वनाथस्तुतिः ।

मुरजः ।

धीमत्सुवन्द्यमान्याय कामोद्वामितवित्तृषे ।
श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे ॥ १०२॥

धीमदिति—धीमान्, बुद्धिमान्, सुवन्द्यः सुस्तुतः, मान्यः पूज्यः । धीमांश्चासौ सुवन्द्यश्च धीमत्सुवन्द्यः, धीमत्सुवन्द्यश्चासौ मान्यश्च

धीमत्सुवन्द्यमान्यः तस्मै धीमत्सुवन्द्यमान्याय । अथवा धीमत्सु बुद्धिमत्सु मध्ये सुवन्द्यमान्याय । विदः बोधस्य तृट् तृष्णा वित्तृट्, कामं अत्यर्थं. उद्भामिता उद्वारिता निराकृता वित्तृट् ज्ञानतृष्णा येनासौ कामोद्भामितवित्तृट् तस्मै कामोद्भामितवित्तृषे । श्रीमते लक्ष्मीमते । वर्धमानाय महावीराय चतुर्विंशतितीर्थंकराय नमः । अयं शब्दो झिसंज्ञकः पूजा वचनः । नमिताः विद्विषो यस्यासौ नमितविद्विट् तस्मै नमितविद्विषे अधःकृतवैरिणे । समुदायार्थः—नमोस्तु ते वर्धमानाय किं विशिष्टाय धीमत्सुवन्द्यमान्याय कामोद्भामितवित्तृषे श्रीमते नमितविद्विषे ॥१०२॥

हे वर्द्धमान स्वामिन् ! आप अतिशय बुद्धिमान हैं । सुवन्द्य हैं । महापूज्य है । श्रीमान् हैं । हे भगवन् आपके शत्रु भी आपको नमस्कार करते हैं । आपकी ज्ञान तृष्णा भी बिलकुल नष्ट होगई है अर्थात् जब आपके लोकालोकको प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान प्रगट होगया है तब भला ज्ञानतृष्णा कहां रह सकती है। हे देव ! ऐसे आपकेलिये मैं नमस्कार करता हूं ॥१०२॥

मुरज।

वामदेव क्षमाजेय धामोद्यमितविज्जुषे ।
श्रीमते वर्धमानाय नमोन मिताविद्विषे॥१०३॥

वामदेवेति—नमो वर्धमानायेति सम्बन्धः । वामाना प्रधानानां देवः तस्य सम्बोधन हे वामदेव । क्षमा अजेया यस्यासौ क्षमाजेयः तस्य सम्बोधनं हे क्षमाजेय । धाम्ना तेजसा उद्यमिता कृतोत्कृष्टा वित् विज्ञान धामोद्यमितावित् तां जुष्टे सेवते इति धामोद्यमिताविज्जुट् तस्मै धामोद्यमितविज्जुषे । अथवा अजेयं धाम तेजो यस्याः सा अजेयधामा, उद्यमिता उद्गता वित् ज्ञानं उद्यमितवित्, अजेयधामा चासौ उद्यमितविच्च

अजेयधामोद्यमितावित् तां जुष्टे- इति- अजेयधामोद्यमिताविज्जुट् तस्मै अजेयधामोद्यमितविज्जुषे । श्रीमते इत्यादि पूर्व एवार्थः । अथवा श्रिया उपलक्षिता मतिर्यस्यासौ श्रीमतिः तस्य सम्बोधनं हे श्रीमते । वर्धमानः वृद्धिं गच्छन् अयः मार्गो यस्यासौ- वर्धमानायः तस्य सम्बोधन हे वर्धमानाय । मा लक्ष्मीः तया ऊनः मोनः न मोनः नमोनः तस्य सम्बोधनं हे नमोन । मिता परिमिता वित् ज्ञानं मितवित् तां विष्णाति निराकरोति इति मितविद्विट् तस्मै मितविद्विषे । एवं सम्बन्धः कर्तव्यः हे वर्धमान श्रीमते वर्धमानाय नमोन मितविद्विषे ते नमः । पुनरपि किंविशिष्टाय वामदेव क्षमाजेय धामोद्यमितविज्जुषे ॥ १०३ ॥

हे वर्द्धमान स्वामिन् ! आप इंद्रादिक प्रधान पुरुषोंके भी देव हैं । आपकी उत्तमक्षमा सर्वत्र अजेय है । आपका केवलज्ञान अतिशय उत्कृष्ट और तेजस्वी है तथा अनन्त चतुष्टयादि अंतरंग लक्ष्मी और समवसरणादि वहिरंग-लक्ष्मीकर सुशोभित है । आपका निरूपण किया हुआ यह मोक्षमार्ग सदा वढ़ता ही जाता है । आप सदा शोभायमान हो । परिमित ज्ञानको निराकरण करनेवाले हो अर्थात् मतिश्रुतादिक परिमितज्ञानको नाश कर केवलज्ञानरूप अपरिमितज्ञानको देनेवाले हो । हे देव ! ऐसे आपकेलिये मैं नमस्कार करता हूं ॥ १०३ ॥

मुरजः ।

समस्तवस्तुमानाय तमोघ्नेमिताविद्विषे ।
श्रीमतेवर्धमानाय नमोन मितविद्विषे ॥ १०४ ॥

समस्तेति— समस्ते विश्वस्मिन् वस्तुनि पदार्थे मानं ज्ञानं यस्यासौ समस्तवस्तुमानः तस्मै समस्तवस्तुमानाय । तमोघ्ने अज्ञानविनाशकाय ।

विशिष्टा त्विट् इति वित्वट् अमिता वित्विट् यस्यासौ अमितवित्विट् तस्मै अमितवित्विषे, श्रीमते इत्येवमादिषु पूर्वएवार्थः। अथवा श्रियं मिमीत इति श्रीमः तस्य सम्बोधनं हे श्रीम। ते तुभ्यं। अथवा श्रियं मन्यत इति श्रीमत् तस्मै श्रीमते। ऋद्धं वृद्धं अवेन कान्त्या ऋद्धं अवर्द्धं, अवर्द्धमानं ज्ञानं यस्यासौ अवर्धमानः अथवा अवर्धं अच्छिन्नं मानं यस्यासौ अवर्धमानः तस्मै अवर्धमानाय। मा पृथ्वी तया ऊनः मोनः न मोनः नमोनः अयं नञ प्रतिरूपो सिंसंशिको नकारः अतो नञोन्यत्रानादेशो न भवति तस्य सम्बोधनं हे नमोन। मितेन ज्ञानेन विनष्टा द्विट् अप्रीतिर्यस्यासौ मितविद्विट् तस्मै मितविद्विषे। किमुक्तं भवति—हे श्रीमते नमोन तुभ्यं नमः किं विशिष्टाय समस्तवस्तुमानाय तमोघ्ने अमितवित्विषे अवर्धमानाय मितविद्विषे ॥ १०४ ॥

हे श्रीवर्द्धमान! आप सम्पूर्ण पदार्थोंके जाननेवाले हैं। अज्ञानरूपी अंधकारके नाश करनेवाले हैं, अपरिमित केवलज्ञानके धारक हैं। हे देव! आप शोभाकी परम सीमाको प्राप्त हुये हो। आपका यह केवलज्ञान अभेद्य है, आप तीनोंलोकोंके स्वामी हैं। रागद्वेषरहित हैं। हे भगवन्! ऐसे आपकेलिये मैं नमस्कार करता हूं॥ १०४ ॥

मुरज.।

प्रज्ञायां तन्वृतं गत्वा स्वालोकं गोर्विदास्यते।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते १०५

प्रज्ञेति—प्रज्ञायां बुद्धयां, तनु स्तोकं। ऋतं सत्यं। गत्वा ज्ञात्वा। स्वालोकं आत्मावबोधनं, गोर्विदा पृथिव्यां ज्ञाता इति अस्यते। यस्य ज्ञानान्तर्गतं बोधाभ्यन्तरम्। भूत्वा प्रभूय। त्रैलोक्यं जगत्त्रयम्। गोष्प-

दायते गोष्पदमिवात्मानमाचरति । समुदायार्थः–प्रज्ञायां तनु ऋत गत्वा स्वालोकं गोविदा अस्यते पुरुषेण तव पुनः ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते तथापि न हर्षो नापि विषादो यतः त्वमेव सर्वज्ञो वीतरागश्च अतः तुभ्यं नमोस्तु इति सम्बन्धः ॥ १०५ ॥

हे ! भगवन् ये संसारीजन अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार थोड़ेसे पदार्थोंको भी सत्यस्वरूप जानकर समस्त पृथ्वीके ज्ञाता कहलाते हैं। अर्थात् उस थोड़ेसे ज्ञानसे ही उन्हे इतना हर्ष होता है कि वे जगतके ज्ञाता कहलाते हैं ।परंतु हे प्रभो ! आपके अपरिमित ज्ञानमें यह त्रैलोक्य एक गोष्पदके समान जान पड़ता है । अर्थात् आपका ज्ञान इतना विस्तृत है कि उसमे यह इतना बड़ा त्रैलोक्य (तीनों लोकोंमें रहनेवाले संपूर्ण पदार्थ) भी अतिशय छोटा जान पड़ता है। हे देव ! आप इतने बड़े महाज्ञानी होकर भी हर्षविषादरहित हैं अतएव आप ही वीतराग हैं। आपकेलिये ही मैं नमस्कार करता हूं॥ १०५॥

श्लोकयमकः ।

को विदो भवतोपीड्यः सुरानतनुतान्तरम् ।
शं सते साध्वसंसारं स्वमुच्छन्नपीडितम्॥१०६॥

कोवीति—कः किमोरूपम् । विदो ज्ञानानि । भवतः त्वत्तः । अपि । ईट् स्वामी । यः यदोरूपम् । सुरान् अमरान् । अपि शब्दोऽत्र सम्बन्धनीयः सुरानपीति अतनुत विस्तारयतिस्म । अन्तः चित्ते भवं आन्तरं आत्मोत्थम् । शं सुखम्, सते शोभनाय । साधु शोभनं । असंसारं सांसारिकं न भवति । सुष्ठु अमुत् स्वमुत् विनष्टराग इत्यर्थः । यच्छन् ददन । अपीडितं अबाधितम् । समुदायार्थः–हे वर्धमान भवतो नान्यः

ईट् यः सुरानपि विदः अतनुत सुखं आन्तरं साधु असंसारं अपीडितं यच्छन् सते शोभनपुरुषाय स कोऽन्यो भवतः स्वमुत् ईट् यावता हि न कश्चित् तस्मात् भवानेव सर्वज्ञः ॥ १०६ ॥

हे श्रीवर्द्धमान। आप देवोंको भी ज्ञान सम्पादन करानेवाले हैं। सिद्धपर्यायमें होनेवाले, निर्बाध और उत्कृष्ट स्वात्मजन्य सुखको देनेवाले हैं तथापि वीतराग हैं। अतएव हे भगवन्! आपके सिवाय अन्य ऐसा कौन है जो हमारा स्वामी हो सके अर्थात् कोई नहीं है। आप ही हमारे स्वामी और सर्वज्ञ देव हो॥ १०६॥

समुद्गकयमकः।

कोविदो भवतोपीड्यः सुरानत नुतान्तरम्।
शंसते साध्वसं सारं स्वमुद्यच्छन्नपीडितम् ॥१०७॥

कोविदेति—कोविदः विचक्षणः। भवतः संसारात्। अपीड्यः अबाधितः। हे सुरानत देवैः प्रणत। नुतान्तरं स्तुतिविशेषम्। शंसते आचष्टे। साध्वस सम्भ्रमम्। सारं फलवत्। स्वं आत्मानं। उद्यच्छन् वहन् बिभ्रत्। ईडितमपि पूजाविधानमपि। अथवा ईडित नुतान्तरं इति सम्बन्धः। समुदायार्थः—हे सुरानत योऽयं कोविदो जनः भवादपीड्यः सन् नुतान्तरं शंसते आचष्टे स्व साध्वस सारं ईडितमपि उद्यच्छन् यस्मात् तस्मादहं स्तुतिविशेषेण तुभ्यं नतः॥ १०७॥

हे वीर! इन्द्रादिक देव भी आपको नमस्कार करते हैं। जो विचक्षण पुरुष संसारमें सुखी होकर आपकी स्तुति करता है उसीका आत्मा सफल और पूज्य हो जाता है। अतएव हे। भगवन् स्तोत्रविशेषोंसे मैं भी आपकी स्तुति करता हूं॥ १०७॥

यमकः।

अभीत्यावर्द्ध मानेनः श्रेयो रुगरु संजयन्।
अभीत्या वर्धमानेन श्रेयोरुगुरु संजयन् ॥१०८॥

अभीत्येति—अभीत्य मम चेतस्यागत्य। अव रक्ष। ऋद्ध वृद्ध। मा अस्मदः इवंतस्य रूपम्। अनेनः हे अपाप। श्रेयः सुखं। रुगरु तेजसा महत्। संजयन् लगयन्। अभीत्या अभयेन दयया इत्यर्थः। हे वर्द्धमान जिनेश्वर। इन स्वामिन्। हे श्रेय सेव्य। उर्वी महती गौर्वाणी यस्यासौ उरुगुः त्व दिव्यवाणीकः त्वं यतः। उ निपातः। संजयन् सम्यग्जयं कुर्वन्। किमुक्तं भवति—हे वर्द्धमान इन ऋद्ध अनेनः श्रेय उरुगुस्त्वं यतः ततः अभीत्या अभयेन श्रेय रुगुरु सजयन् लगयन् जयंश्च मा अव रक्ष ॥ १०८ ॥

हे श्रीवर्द्धमान! आप सबके स्वामी हैं, वृद्ध अर्थात् बड़े हैं, पापरहित हैं, सबके सेव्य हैं, दिव्यवाणी अर्थात् दिव्य ध्वनिको धारण करनेवाले हैं, केवलज्ञानके साथ होनेवाले अनंत सुखको देनेवाले हैं, सबके जीतनेवाले हैं। हे भगवन्! मेरे हृदयमें विराजमान होकर मेरी रक्षा कीजिये ॥ १०८ ॥

द्व्यक्षरवृत्तम्।

नानानन्तनुतान्त तान्तितनिनुन्नुन्नान्त नुन्नानृत
नूतीनेन नितान्ततानितनुते नेतोन्नतानां ततः।
नुन्नातीतितनून्नातिं नितनुतान्नीतिं निनूतातनु-
न्तान्तानीतिततान्नुतानन नतान्नो नूतनैनोनु नो ॥

नानेति—श्रीवर्धमान इत्यनुवर्तते। नाना अनेकप्रकारा: । अनन्ता: अनूना: अमेया: नुता: स्तुता: अन्ता धर्मा: यस्यासौ नानानन्तनुतान्त: तस्य सम्बोधन हे नानानन्तनुतान्त अनेकप्रकारामेयस्तुतगुण इत्यर्थ: । तांत खेद करोतीति ' तत्करोति तदाचष्टे इत्यादिना सूत्रेण णिन् '। तान्ति: ' अत: भावे क्त: इति क्त: ' तान्तितं भवति। तान्तितं दु:खं निनुदति प्रेरयति इति तान्तितनिनुत् तस्य सम्बोधनं हे तान्तितनिनुत्। नुन्न: विनष्ट: अन्तो विनाशो यस्यासौ नुन्नान्त: तस्य-सम्बोधनं हे नुन्नान्त। नुन्नं विनाशितं अनृत असत्यं यस्यासौ नुन्नानृत: तस्य सम्बोधन हे नुन्नानृत विनष्टासत्य। नूतीनां स्तुतीनां इना: स्वामिन:. नूतीना: नूतीनाना इन: स्वामी नूतीनेन: तस्य सम्बोधन-हे नूतीनेन-गणधरेन्द्रादिस्वामिन्। नितान्त-अत्यर्थं तानिता विस्तारिता नुति:-कीर्ति: स्तुतिर्वा यस्यासौ नितान्ततानितनुति: तस्य सम्बोधनं हे नितान्ततानितनुते,अत्यर्थविस्तारितकीर्ते। अथवा नूतीनेनेन गणधरेन्द्रेण-नितान्ततानितनुते। नेता नायक:। उन्नतानां, इन्द्रादिप्रभूणाम्। तत:-तस्मात्। तनु: शरीरं तनोरुन्नतिर्महत्त्वं तनून्नति: अतीतिर्विनाश:, अतीतिश्च तनून्नतिश्च अतीतितनून्नती, नुन्ने विनाशिते अतीतितनून्नती यया सा नुन्नातीतितनून्नति: तां नुन्नातीतितनून्नतिम्। नितनुतात् कुरुतात्। नीतिं बुद्धिं विज्ञानम्। अथवा नुन्नातीतितनून्नतिं नितनुतात् नीतिं च। च शब्दोनुक्तोऽपि द्रष्टव्य:। निनुत स्तुत सुपूजित। अतनुं महतीं। तान्तान् दु:खितान्। ईतिततान् व्याधिव्याप्तान्। हे नुतानन नुत स्तुतं आननं मुखं यस्यासौ नुतानन: तस्य सम्बोधन हे नुतानन। नतान् प्रणतान्। न: अस्मान्। नूतनं अभिनव एन: पापं नूतनैन:। अत्तु भक्षयतु। नो प्रतिषेधे। किमुक्तं भवति-हे श्रीवर्द्धमान नानानन्तनुतान्त यत: उन्नतानां नेता त्वं तत: नीतिं नुन्नातीतितनून्नतिं अतनुं

नितनुतात् नतान् नः अस्मान् तान्तान् ईतिततान् नो नितनुतात् नूतनैनश्च अत्तु भक्षयतु अन्यानि विशेषणानि भट्टारकस्य विशेषणानि ॥ १०९ ॥

हे श्रीवर्द्धमान ! अनेक भव्यजन आपके नानाप्रकारके अनन्त गुणोंकी सदा स्तुति करते रहते हैं। हे देव आप दुःखोंके दूर करनेवाले हैं। विनाशरहित हैं। एकांतात्मक असत्यको नाश करनेवाले हैं। सबके पूज्य है। आपकी शुभ्रकीर्त्ति संसारभरमें व्याप्त है। सब कोई आपके श्रीमुखकी स्तुति करता है। इन्द्र गणधरादिकोंके भी आप स्वामी हैं। इन्द्र चक्रवर्त्ती आदि महापुरुषोंके नायक हैं। अतएव हे भगवन् ! जन्ममरणको दूर करनेवाला केवलज्ञान नामक महाविज्ञान हमें दीजिये। हे प्रभो ! हम नमस्कार करनेवाले लोग ससारके अनेक दुःखोंसे दुःखी हैं। नाना व्याधियोंसे घिरे हैं। हे देव ! आपको नमस्कार करते हैं। हमारा यह दुःख और ये व्याधियां दूर कर दीजिये तथा हमारे ये हालके (नये) पाप भी नष्ट कर दीजिये ॥ १०९ ॥

चक्रवृत्तम्।

वंदारुप्रबलाजवंजवभयप्रध्वंसिगोप्राभव
वर्द्धिष्णो विलसद्गुणार्णव जगन्निर्वाणहेतो शिव।
वंदीभूतसमस्तदेव वरद प्राज्ञैकदक्षस्तव
वंदे त्वाबनतो वरं भवभिदं वर्यैकवंद्याभव ।११०।

वन्देति—इदं चक्रं भूमौ फलके वा व्यालिख्य त्रयः पादाः

अरमध्ये स्थाप्याः । चतुर्थपादो नेमिमध्ये एवं च सर्वचक्रवृत्तानि दृष्टव्यानि ।

वन्दारवः वन्दनशीला प्रबल प्रचुरं आजवंजवः संसारः भयं भीः आजवजवाद्भय आजवंजवभयं प्रबल च तत् आजवजवभयं च तत् प्रबलाजवंजवभयं । वन्दारूणां प्रबलाजवंजवभयं वन्दारुप्रबलाजवजवभयं । तत् प्रध्वंसयति विनाशयतीत्येवंशीलं वन्दारुप्रबलाजवजवभयप्रध्वांसि । प्रभोर्भावः प्राभवम् । गोर्वाण्याः प्राभवं प्रभुत्व गोप्रभवं वाणीमाहात्म्यमित्यर्थः । वन्दारुप्रबलाजवंजवभयप्रध्वंसि गोप्राभव यस्यासौ वन्दारुप्रबलाजवंजवभयप्रध्वंसिगोप्राभवः तस्य सम्बोधनं वन्दारुप्रबलाजवंजवभयप्रध्वंसिगोप्राभव । वर्द्धिष्णो वर्द्धनशील । गुणा एव अर्णवो गुणार्णवः विलसन् शोभमानो गुणार्णवो गुणसमुद्रो यस्यासौ विलसद्गुणार्णवः तस्य सम्बोधन विलसद्गुणार्णव। निर्वाणस्य मोक्षस्य हेतुः कारण निर्वाणहेतुः । जगतां भव्यलोकाना निर्वाणहेतुः जगन्निर्वाणहेतुः। तस्य सम्बोधन हे जगन्निर्वाणहेतो । शिव परमात्मन् । वन्दीभूताः मङ्गलपाठकाभूताः समस्ताः देवाः विश्वे सुरवराः यस्यासौ वन्दीभूतसमस्तदेवः तस्य सम्बोध॰ हे वन्दीभूतसमस्तदेव । वरद इष्टद । प्रज्ञानां मतिमता एकः प्रधानः प्राज्ञैकः । दक्षाणा विचक्षणानां स्तवः स्तुतिवचनं यस्यासौ दक्षस्तव । अथवा दक्षैः स्तूयते इति दक्षस्तवः प्राज्ञैकश्चासौ दक्षस्तवश्च प्राज्ञैकदक्षस्तवः तस्य सम्बोधनं प्राज्ञैकदक्षस्तव । वन्दे स्तुवे । त्वा भवन्तम् । अवनतः प्रणतः। वरं श्रेष्ठम् । भवभिद संसारस्य भेदकम् । हे वयं शोभन । एकः वन्द्यः एकवन्द्यः तस्य सम्बोधनं हे एकवन्द्य संसारित्वेन न भवति इत्यभवः तस्य सम्बोधनं हे अभव। एतदुक्त भवति—हे वर्द्धमान भट्टारक सम्बोधनान्तानि सर्वाणि विशेषणानि अस्यैव भवन्ति । वन्दे अवनतो भूत्वाहं त्वा किंविशिष्टं वरं भवभिदम् इति ॥ ११० ॥

हे श्रीवीरनाथ भगवन्! आपकी दिव्यध्वनिका ऐसा अद्भुत माहात्म्य है कि वह आपको नमस्कार करनेवाले जीवोंका जन्ममरणमय संसारसे उत्पन्न होनेवाला प्रचुर भय भी नष्ट कर देती है। हे परमात्मन्! आप सदा वर्द्धमान हो अर्थात् बढते ही रहते हो। आपका यह गुणसागर कैसा अच्छा सुशोभित हो रहा है। हे देव! भव्यजीवोंको मोक्ष जानेकेलिये आप प्रधान कारण हो। सम्पूर्ण इन्द्रादिक देव आपके बंदीजन हैं सदा आपका मंगलपाठ पढ़ा करते हैं। आप इष्ट पदार्थको देनेवाले हैं। ज्ञानियोंमें प्रधानज्ञानी हैं। बड़े २ चतुरपुरुष भी आपकी स्तुति किया करते हैं। आप सबसे श्रेष्ठ हैं। जन्म मरण रूप संसारका नाश करनेवाले हैं। अतिशय शोभायमान हैं। यह सम्पूर्ण जगत एक आपको ही नमस्कार करता है। आप संसारसे रहित हैं। हे प्रभो! बार २ प्रणाम करता हुआ मैं आपकी स्तुति करता हूं॥ ११०॥

इष्टपादवलयप्रथमचतुर्थसप्तमवलयैकाक्षरचक्रवृत्तम्।

नष्टाज्ञान मलोन शासनगुरो नम्रं जनं पानिनं
नष्टग्लान सुमान पावन रिपूनप्यालुनन् भासन।
नत्येकेन रुजोन सज्जनपते नंदन्ननंतावन
नंतर्जुन् ज्ञानविहीनधामनयनो नः स्तात्पुनन् सज्जिन

नष्टेति—नष्टं विनष्टं अज्ञानं यस्यासौ नष्टाज्ञानः तस्य सम्बोधनं हे नष्टाज्ञान। मलेन कर्मणा ऊनः रहितः मलोनः तस्य सम्बोधनं हे मलोन। शासनस्य दर्शनस्य आज्ञाया वा गुरुः स्वामी शासनगुरुः तस्य

सम्बोधनं हे शासनगुरो । नम्रं नमनशीलम् । जनं भव्यलोकम् । पान् रक्षन् । इन स्वामिन् । नष्टं विनष्टं ग्लानं मूर्च्छादिकं यस्यासौ नष्टग्लानः तस्य सम्बोधनं हे नष्टग्लान । शोभनं मानं विज्ञानं यस्यासौ सुमानः तस्य सम्बोधनं हे सुमान । पावन पवित्र । रिपूनपि अतः शत्रूनप्यालुनन् आ समन्तात् खण्डयन् । भासन शोभन । नतीनां प्रणतीनां एकः प्रधानः इनः स्वामी नत्येकेनः तस्य सम्बोधनं हे नत्येकेन । रुजया रोगेण ऊनः रुजोनः तस्य सम्बोधनं हे रुजोन । सज्जनानां पतिः सज्जनपतिः तस्य सम्बोधनं हे सज्जनपते । नन्दन् आनन्दं कुर्वन् । अनन्त अविनाश । अवन रक्षक । नन्तॄन् स्तोतॄन् । हानेन क्षयेण विहीनं ऊनं हानविहीनं धाम तेजः हानविहीनं च तत् धाम च हानविहीनधाम, हानविहीनधामैव नयनं यस्यासौ हानविहीनधामनयनः त्वम् । नः अस्मान् । स्तात् भव । पुनन् पवित्रीकुर्वन् । हे सज्जिन शोभनजिन । एतदुक्तं भवति-हे भट्टारक नष्टाज्ञान नम्रं जनं पान् रिपुनप्यालुनन् नन्तॄन् नन्दन् नः अस्मान् पुनन् हानविहीनधामनयनस्त्वं स्तात् । शेषाणि सर्वाणि सम्बोधनान्तानि पदानि अस्यैव विशेषणानि भवन्तीति ॥ १११ ॥

हे भगवन् ! आप अज्ञानरहित हैं । कर्मरहित हैं । इस जैन शासनके नायक हैं । सबके स्वामी हैं । मूर्च्छादिक परिग्रह-से दूर हैं । अतिशय पवित्र है । अतिशय शोभायमान हैं । रोगादिक दोषोंसे रहित हैं । सज्जनजनोंके अधिपति हैं । नाशरहित हैं । जिनेन्द्र हैं । सबके रक्षक हैं । आपका यह विशाल केवलज्ञान अतिशय सुशोभित है । प्रणामोंके आप मुख्य स्वामी हैं अर्थात् सबके वंद्य हैं । हे प्रभो ! जो भव्यजन आपको नमस्कार करते हैं उनकी आप रक्षा कीजिये, उनके मोहा-

दिक अंतरंग शत्रुओंको नाश कीजिये, आपकी स्तुति करनेवालोंको सदा आनंद दीजिये, और हम लोगोंको पवित्र कीजिये। जिससे कि "विनाशरहित केवलज्ञानरूप नेत्रको धारण करनेवाला" यह जो आपका प्रसिद्ध नाम है वह सार्थक हो जाय ॥ १११ ॥

इष्टपादवलयप्रथमचतुर्थसप्तमवलयैकाक्षरचक्रवृत्तम्।

रम्यापारगुणारजस्सुरवरैरर्च्याक्षर श्रीधर
रत्यूनारतिदूर भासुर सुगीरर्य्योत्तरर्द्धीश्वर।
रक्तान् क्रूरकठोरदुर्द्धररुजोरक्षन् शरण्याजर
रक्षाधीरं सुधीर विद्वर गुरो रक्तं चिरं मा स्थिर ॥

रम्येति—इष्टपादो वलयरूपो भवतीत्यर्थः। रम्य रमणीय। अपारगुण अपरिमेयगुण। अरजः ज्ञानावरणादिकर्मरहित। सुरवरैः देवप्रधानैः। अर्च्य पूज्य। अक्षर अनश्वर। श्रीधर लक्ष्मीभृत्। रत्या रागेण ऊन रहित। अरतेर्दूरः विप्रकृष्टः अरतिदूरः तस्य सम्बोधनं हे अरतिदूर। भासुर भास्वर। शोभना गीर्वाणी यस्यासौ सुगीः स्वामिति सम्बन्धः। अर्य स्वामिन्। उत्तराः प्रकृष्टाः ऋद्धयो विभूतयः उत्तरर्द्धयः उत्तरर्द्धीनां ईश्वरः स्वामी उत्तरर्द्धीश्वरः तस्य सम्बोधनं हे उत्तरर्द्धीश्वर। रक्तान् भक्तान्। क्रूरा रौद्रा, कठोरा निष्ठुरा, दुर्द्धरा, रुक् व्याधिः, क्रूरा चासौ कठोरा च क्रूरकठोरा, क्रूरकठोरा चासौ दुर्द्धरा च क्रूरकठोरदुर्द्धरा, क्रूरकठोरदुर्द्धरा चासौ रुक् च क्रूरकठोरदुर्द्धररुक् तस्याः रक्षन् प्रतिपालयन्। शरण्य शरणीय। अजर जराहीन। रक्ष पालय। आधिर्मनःपीडा आधिं हरति क्षिपतीत्याधीरः

स्य सम्बोधन हे आधीर । सुधीर अक्षोभ । विदा पण्डिताना वरः ।धानः विद्वर. तस्य सम्बोधनं हे विद्वर । गुरो स्वामिन् । रक्तं भक्तम् । चेरं अत्यर्थम् । मा अस्मदः प्रयोगः । स्थिर नित्य । एतदुक्त भवति-हे भट्टारक रम्य इत्यादि गुणविशिष्ट क्रूरकठोरदुर्द्धररुजोरक्तान् रक्षन् मा रक्त रक्ष ॥ ११२ ॥

हे भगवन् ! आप अतिशय सुंदर हो । अनंतगुणोके धारक हो । ज्ञानावरणादि कर्मोसे रहित हो । इन्द्रादिक देव भी आपकी पूजा करते हैं । हे प्रभो ! आप विनाशरहित हो । समवसरणादि लक्ष्मीके धारक हो । रागरहित हो । द्वेषसे बहुत दूर हो । अतिशय देदीप्यमान हो । अनंत चतुष्टयादि उत्कृष्ट ऋद्धियोके स्वामी हो । सबके नायक हो । सबको शरण देनेवाले हो । जरारहित हो । अनेक मानसिक व्याधियोको दूर करनेवाले हो । क्षोभरहित हो विद्वानोंमे श्रेष्ठ हो । सबके गुरु हो । नित्य हो, और सुन्दर दिव्यध्वनिकर सुशोभित हो । हे देव ! आपके जो भक्तजन हैं उन्हे इन कठिन भयानक और अतिशय दुर्द्धर जन्ममरणादि व्याधियोसे रक्षा कीजिये, तथा मैं भी आपका एक भक्त हूं इसलिये हे नाथ ! मेरी भी रक्षा कीजिये ॥ ११२ ॥

इति वर्द्धमानस्तुतिः ।

चक्रवृत्तम् ।

प्रज्ञा सा स्मरतीति या तव शिरस्तद्यन्नतं ते पदे
जन्मादः सफलं परं भवभिदी यत्राश्रिते ते पदे ।

मांगल्यं च स यो रतस्तव मते गीः सैव या त्वा स्तुते
ते ज्ञा ये प्रणता जनाः क्रमयुगे देवाधिदेवस्य ते ११३।

प्रज्ञेति—प्रज्ञा बुद्धिः। सा तदः प्रयोगः। स्मरति चिन्तयति। इति शब्दः अवधारणार्थः। या यदः टावन्तस्य रूपम्। तव ते 'स्मृत्यर्थदयेशां कर्मणीति ता भवति'। शिरः मस्तकम्। तत् यत्। नतं प्रणतम्। ते तव। पदे चरणे। जन्म गत्यन्तरगमनम्। अदः अदसः अपरोक्षवाचिनो रूपम् एतदित्यर्थः। सफलं सकार्यम्। पर श्रेष्ठम्। भवभिदी संसारभेदिनी। यत्र यस्मिन्। आश्रिते सेविते। ते तव। पदे चरणयुगलम्। माङ्गल्यं पूतं। च शब्दः समुच्चयार्थः। सः तदो रूपम्। यः यदो रूपम्। रतः रक्तः भक्तः। तव ते। मते आगमे। गीः वाक्। सैव सा एव नान्या। या त्वा भवन्तम्। स्तुते वन्दते। ते तदः जसन्तं रूपम्। ज्ञाः पण्डिताः। ये यदो जसन्तं रूपम्। प्रणताः प्रकर्षेण नताः। जनाः भक्तभव्यलोकाः। क्रमयुगे चरणद्वन्द्वे। देवानामधिदेवः परमात्मा देवाधिदेवः तस्य देवाधिदेवस्य। ते तव। स्तुत्यवसाने कृतकृत्यः सन् आचार्यः समन्तभद्रस्वामी उपसंहारकं करोति। किमुक्तं भवति-भट्टारक सैव प्रज्ञा या त्वा स्मरति। शिरश्च तदेव यन्नतं ते पदे इत्येवमादि योज्यम्॥ ११३॥

आचार्यवर श्रीसमन्तभद्रस्वामी इसप्रकार चतुर्विंशति तीर्थकरोंकी स्तुति कर कृतकृत्य होकर अन्तमें अपने स्तोत्रका उपसंहार करते हैं।

हे देवाधिदेव! इस जगतमें बुद्धि वही है जो आपके चरणकमलोंको स्मरण करे। मस्तक वही है जो आपके चरण सरोरुहों। नमस्कार करे। जन्म वही सफल और श्रेष्ठ है जो

जन्म मरणरूप संसारको नाश करनेवाले आपके चरणसरोजका आश्रय ले। पवित्र वही है जो आपके आगमकी भक्ति करै। वाणी वही है जो आपकी स्तुति करे, और पंडितजन वे ही हैं जो आपके चरणयुगलोमे बार २ प्रणाम करे॥ ११३॥

चक्रवृत्तम्।

सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्च्चनं चापि ते
हस्तावंजलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि संप्रेक्षते।
सुस्तुत्यां व्यसनं शिरो नतिपरं सेवेदृशी येन ते
तेजस्वी सुजनोहमेव सुकृती तेनैव तेजःपते॥११४॥

सुश्रद्धेति—सुश्रद्धा सुरुचिः। मम अस्मदः प्रयोगः। ते तव। मते विषये। स्मृतिरपि स्मरणमपि। त्वयि युष्मदः ईवन्तस्य रूपम्। अर्चनं चापि पूजनं चापि त्वय्येवेति सम्बन्धः। चशब्दः समुच्चयार्थः। ते तव। हस्तौ करौ। अञ्जलये अञ्जलिनिमित्तं ते इत्यनेन सम्बन्धः। कथा गुणस्तवनं। कथायाः श्रुतिः श्रवण कथाश्रुतिः। तस्या रतः रक्तः कथाश्रुतिरतः। कर्णः श्रवणम्। अक्षि चक्षुः। सम्प्रेक्षते सपश्यति। ते रूपमिति सम्बन्धः सामर्थ्याल्लभ्यते। सुस्तुत्या शोभनस्तवने। व्यसनं तत्परत्वम्। शिरः मस्तकम्। नतिपरं प्रणामतत्परम्। सेवा सेवनम्। ईदृशी ईदृग्भूता। प्रत्यक्षवचनमेतत्। येन यदो भान्तस्य रूपं येन कारणेनेत्यर्थः। ते तव। तेजस्वी भास्वान्। सुजनः शोभनजनः। अह अस्मदो वान्तस्य रूपम्। एव अवधारणार्थः। अहमेव नान्यः। सुकृती पुण्यवान्। तेनैव तदो भान्तस्य रूपं। तेनैव कारणेनेत्यर्थः। हे तेजःपते केवलज्ञानस्वामिन्। समुदायार्थः—मम श्रद्धा या मम स्मृतिश्च या सा

तवैव मते, ममार्चनमपि यत्तत् त्वय्येव, मम हस्तौ यौ त्वत्प्रणामाञ्जलि-निमित्तम्, कर्णश्च मम ते कथाश्रुतिरतः, अक्षि च मम तव रूपदर्शन-निमित्तम्, मम व्यसनमपि तव स्तुत्याम्, शिरश्च मम तव नतिपरम्। येन कारणेन ईदृशी सेवा मम हे तेजःपते तेनैव कारणेन अहमेव तेजस्वी सुजनः सुकृती नान्य इत्युक्तं भवति ॥ ११४ ॥

हे भगवन्! मेरी श्रद्धा केवल आपमें ही है। मैं स्मरण भी केवल आपका ही करता हूं। पूजन भी केवल आपका ही करता हूं! ये मेरे दोनो हाथ केवल आपको प्रणाम करने और आपकेलिये अंजलि देने (हाथ जोड़ने) के काम आते हैं। मेरे कान सदा आपकी कथा सुननेमें ही तत्पर रहते हैं। मेरे नेत्र सदा आपके रूप देखनेमें ही लगे रहते हैं। मेरा व्यसन अर्थात् अभ्यास आपकी स्तुति करनेमें ही है। मेरा मस्तक भी केवल आपको नमस्कार करनेमें ही काम आता है। हे प्रभो! हे परमात्मन् मैं आपकी ऐसी सेवा करता हूं अतएव हे तेजोनिधे! (केवलज्ञानके स्वामी) समझना चाहिये कि संसारमें मैं ही तेजस्वी हूं मैं ही सुजन हूं और मैं ही पुण्य-वान् हूं। मेरे समान तेजस्वी सुजन और पुण्यवान् अन्य कोई नहीं है ॥ ११४ ॥

चक्रवृत्तम्।

जन्मारण्यशिखी स्तवः स्मृतिरपि क्लेशाम्बुधेर्नौः पदे
भक्तानां परमौ निधी प्रतिकृतिः सर्वार्थसिद्धिः परा।

वन्दीभूतवतोपि नोन्नतिहतिर्नन्तुश्च येषां मुदा
दातारो जयिनो भवन्तु वरदा देवेश्वरास्ते सदा ११५।

जन्मेति—जन्म संसारः, अरण्यं अटवी, शिखी अग्निः, जन्मैवारण्यं जन्मारण्यम्, जन्मारण्यस्य शिखी जन्मारण्यशिखी । स्तवः गुणस्तवनम् । स्मृतिरपि स्मरणमपि । क्लेशाम्बुधे दुःखसमुद्रस्य नौः पोतः । पदे पादौ । भक्तानामनुरक्तानां । परमौ श्रेष्ठौ । निधी द्रव्यनिधाने । प्रतिकृतिः प्रतिबिम्बम् । सर्वार्थाना सकलकार्याणां सिद्धिः निष्पत्ति. सर्वार्थसिद्धिः । परा प्रकृष्टा । वन्दीभूतवतोपि मङ्गलपाठकीभूतवतोपि नग्नाचार्यरुपेण भवतोपि ममेत्यर्थः । न प्रतिषेधवचनम् । उन्नतेः माहात्म्यस्य हतिः हननं उन्नतिहतिः। नन्तुश्च स्तोतुश्च। येषा यदः आमन्तस्य रूपम्, मुदा हर्षेण । दातारो दानशीलाः, जयोस्ति येषा ते जयिनः । भवन्तु सन्तु । वरं ददत इति वरदाः स्वेष्टदायिनः । देवानां सुराणां ईश्वराः स्वामिनः देवेश्वरा. । ते तदो जसन्तस्य रूपम् । सदा सर्वकालम् । एतदुक्त भवति येषां स्तवः जन्मारण्यशिखी भवति, येषां स्मृतिरपि क्लेशाम्बुधेश्च नौः भवति, येषां च प्रतिकृतिः सर्वार्थसिद्धिः परा, येषा नन्तु मुदा वन्दीभूतवतोपि नोन्नतिहतिः, ते देवेश्वराः दातारः जयिनः वरदाः भवन्तु सदा सर्वकालम् ॥ ११५ ॥

हे भगवन्! जिनके गुणोंका स्तवन करना जन्ममरणरूपी वनको जलानेकेलिये अग्निके समान है जिनका स्मरण करना दुःखरूपी समुद्रसे पार होनेकेलिये नौकाके समान है। जिनके चरणकमल भक्त लोगोंके लिये अतिशय श्रेष्ठ और सम्पूर्ण द्रव्योंके

---

१ जायमानस्यापि मम ।

देनेवाले निधिके समान हैं । जिनका प्रतिबिम्ब सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि करनेवाला और अत्युत्कृष्ट गिना जाता है । तथा जिनका स्तोत्र करनेवाले और सहर्ष मंगलपाठ पढनेवाले नग्नाचार्य रूपसे रहनेवाले मुझसेवककी उन्नतिका बाधक संसारमें कोई नहीं है । इस कारण हे देव ! ऐसे देवोंके ईश्वर, दानशील और जयशील आप सदा वरद अर्थात् इष्ट पदार्थोंके देनेवाले हूजिये ॥११५॥

कविकाव्यनामगर्भचक्रवृत्तम् ।

गत्वैकस्तुतमेव वासमधुना तं येच्युतं स्वीशते
यन्नत्येति सुशर्म पूर्णमधिकां शान्तिं वृजित्वाध्वना
यद्भक्त्या शमिताकृशाघमरुजं तिष्ठेज्जनः स्वालये
ये सद्भोगकदायतीव यजते ते मे जिनाः सुश्रिये ११६

गत्वेति—षडरं नववलय चक्रमालिख्य सप्तमवलये शान्तिवर्मकृतं इति भवति । चतुर्थवलये जिनस्तुतिशतं-इति च भवति अतः कविकाव्यनामगर्भचक्रवृत्तं भवति ।

गत्वा यात्वा । एकः प्रधानः, स्तुतः पूज्यः, एकश्चासौ स्तुतश्च एकस्तुतः तं एकस्तुतम् । एवकारोवधारणार्थः । वासं मोक्षस्थानम् । अधुना साम्प्रतम् । तं तदः इवन्तस्यरूपम् । ये यदो जसन्तस्य रूपम् । अच्युतं अक्षयम् । स्वीशते सुऐश्वर्यं कुर्वते । येषां नतिः स्तुतिः यन्नतिः तया यन्नत्या । एति आगच्छति । सुशर्म अनन्तसुखम् । पूर्णं सम्पूर्णम् अधिकां महतीं प्रधानां । शान्तिं शमनम् । वृजित्वा गत्वा । अध्वना सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमार्गेण । येषा भक्तिः सेवा यद्भक्तिः तया यद्भक्त्या । शमितं शान्तं नष्टं अकृशाघं, अकृशं महत् अघं पापं, अकृशं च तदघंच

अकुशाघं, शमित च तत् अकुशाघ च शमिताकुशाघम् क्रियाविशेषणमेतत्। रुजा रोगः न विद्यते रुजा यस्मिन् तत् अरुजम्। तिष्ठेत् आस्येत। जनः भव्यलोकः। स्वालये शोभनस्थाने। ये यदो जसन्तस्य रूपम्। भोगः सुखाङ्गं सन् शोभनो भोगः सद्भोगः सद्भोग एव सद्भोगकः तं सद्भोगकं ददत इति सद्भोगकदाः शोभनभोगदातारः इत्यर्थः। अतीव अत्यर्थम्। यजते पूजकाय यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु इत्यस्य धोः शत्रन्तस्य रूपम्। ते तदो जसन्तस्य रूपं परोक्षवाचि। मे मम। जिनाः श्रीमदर्हन्तः। शोभना श्रीः सुश्रीः तस्यै सुश्रिये। भवन्तीत्यध्याहार्यम्। किमुक्त भवति–एवंगुणविशिष्टाः जिनाः ते मे भवन्तु सुश्रिये मोक्षायेत्यर्थः॥ ११६॥

जो श्रीजिनेन्द्रदेव विनाश रहित और परमपूज्य मोक्षस्थानमें जाकर अतिशय ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं। जिनको नमस्कार करनेमात्रसे सम्पूर्ण अनंतसुख स्वयं आकर प्राप्त होते हैं। जिनकी भक्ति करनेमात्रसे यह जीव अतिशय शांतचित्त हो जाता है, बड़े बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं, रोग नष्ट होजाते हैं और यह (जीव) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप मोक्षमार्गके द्वारा उत्तम मोक्षस्थानमें जाकर विराजमान होता है। तथा जो श्रीजिनेन्द्रदेव नित्यपूजन करनेवाले अपने भक्त लोगोंकेलिये उत्तम मोक्षरूप सुख देनेवाले हैं। ऐसे श्रीअरहंतदेव मेरेलिये उत्तम मोक्षरूप लक्ष्मी दें॥ ११६॥

इति श्रीनरसिंहमहाकविभव्योत्तमविरचिता जिनशतकवृत्तिः समाप्ता।

परिशिष्ट ।

गतप्रत्यागतार्द्धः ।

भासते विभुतास्तोना ना स्तोता भुवि ते सभाः ।
याः श्रिताः स्तुत गीत्या नु नुत्या गीतस्तुताः श्रिया १०

भा	स	ते	वि	भु	ता	स्तो	ना
या	श्रि	ताः	स्तु	त	गी	त्या	नु

एवं ८३, ८८, ९५ श्लोकाः ।

इस कोष्टककी पंक्तियोको उलटा पढ़नेसे उपर्युक्त श्लोकका शेष भाग बन जाता है।

गतप्रत्यागतपाद पादाभ्यासयमकाक्षरद्वयविरचितश्लोक ।

वीरावारर वारावी वररोरुरुरोरव ।
वीरावारर वारावी वारिवारिरि वारि वा ॥८५॥

इस कोष्टककी प्रत्येक पंक्तिको उल्टा पढ़नेसे पूरा श्लोक बन जाता है।

वी	रा	वा	र
व	र	रो	रु
वी	रा	वा	र
वा	रि	वा	रि

एवं ९३, ९४ श्लोकौ ।

मुरजबन्धः।

श्रीमज्जिनपदाभ्याशं प्रतिपद्यागसां जये।
कामस्थानप्रदानेशं स्तुतिविद्यां प्रसाधये॥१॥

श्री म ज्जि न प दा भ्या शं प्र ति प द्या ग सां ज ये
का म स्था न प्र दा ने शं स्तु ति वि द्यां प्र सा ध ये

मुरजबन्धः।

एवं प्रथम द्वितीय चित्र समाः
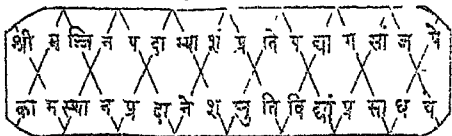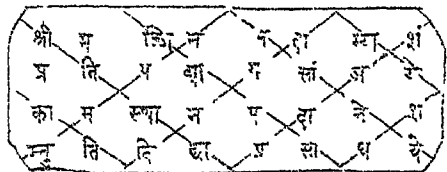
२।६, ७, ८, ९, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३९, ४०, ४१, ४२, ४५, ४९, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६५, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ८०, ८२, ९९, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५ श्लोका ज्ञेयाः।

अनन्तर पाद मुरज बन्धः।

अभिषिक्तः सुरैर्लोके स्त्रिभिर्भक्तः परैर्नकैः।
वासुपूज्य मयीशेयस्त्वं सुपूज्यः कयीदृशः॥४८॥

एवं ६४, ६६, १०० श्लोका ज्ञेयाः

अथैकैकाक्षरान्तरित मुरज बन्धः।
क्रमतामक्रमं क्षेम धीमतामर्च्यमश्रमम्।
श्रीमल्लिमल संमीमं वामकामं नमक्षमम्॥५०॥

एवं ९१, ९१ श्लोकौ

अर्धभ्रमः।

धिया ये श्रितयेतार्त्थ्या यातु पायान्वरानतः।
ये पापा यातपारा ये श्रियायाला नतन्वत ॥३॥

श्रि	या	ये	श्रि	त	ये	ता	र्त्थ्या
या	नु	पा	या	न्व	रा	न	तः
ये	पा	पा	या	त	पा	रा	ये
श्रि	या	या	ला	न	त	न्व	त

एवं ४, १८, १९, २०, २१, २७, ३६, ४२, ४४, ५६, ९०, ९२ श्लोका ज्ञेयाः।

बहु क्रियापद द्वितीय पाद मध्य यम कातालुव्यञ्जना-
वर्ण स्वर गूढ द्वितीय पाद सर्वतो भद्रः।

पारावार रवारा पारा क्षमाक्ष क्षमाक्षरा।
वामा नाम मना मावारक्ष मर्द्दर्द्द मक्षर ॥८४॥

पा	रा	वा	र	र	वा	रा	पा
रा	क्ष	मा	क्ष	क्ष	मा	क्ष	रा
वा	मा	ना	म	म	ना	मा	वा
र	क्ष	म	र्द्द	र्द्द	म	क्ष	र
र	क्ष	म	र्द्द	र्द्द	म	क्ष	र
वा	मा	ना	म	म	ना	मा	वा
रा	क्ष	मा	क्ष	क्ष	मा	क्ष	रा
पा	रा	वा	र	र	वा	रा	पा

इस कोष्टक में ऊपर का श्लोक चारों ओर से पढ़ा जाता है।

गर्भे महादिशि चैकाक्षरश्चतुरक्षरश्चक्र

श्लोकः।

नन्द्यनन्तर्ध्यनन्तेन नन्तेनस्तेमि नन्दन ।

नन्द नर्द्धिर नम्रो न नम्रो नष्टोमि नन्द्यन ।२२।
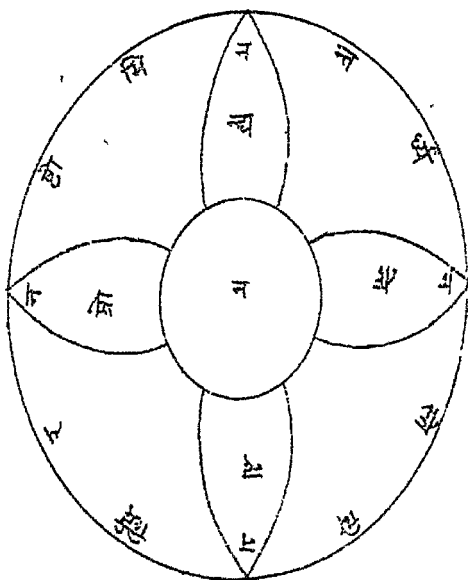
एवं २२। २४ श्लोकौ ।

चक्र श्लोकः

वरगौरतनुं देव वंदे नुत्वा क्षयार्ज्जव ।
वर्ज्जक्षर्त्ति त्वसार्याव वर्यामानोरुगौरव ।। ५६ ।।
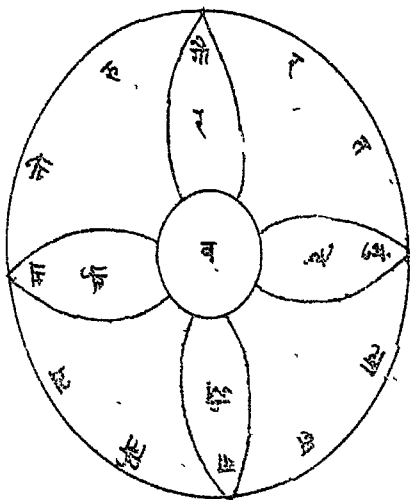
एवं ५३, ५६ श्लोकौ ।

इष्ट पाद वलय प्रथम चतुर्थ सप्तम वलयैकाक्षर चक्र वृत्तम्।

नष्टाज्ञान मलौघ शासनगुरो नम्रं जनं पानिन
नष्टग्लानि सुमान पावन रिपून्ध्वाल्लुनन्भासन।
नत्वैकेन रुजौघ सज्जन पते नन्दन्तनन्तावन
नन्तृन् हानविहीनधाम नयनो नःस्तात्पुनन्
सज्जिन ॥१११॥
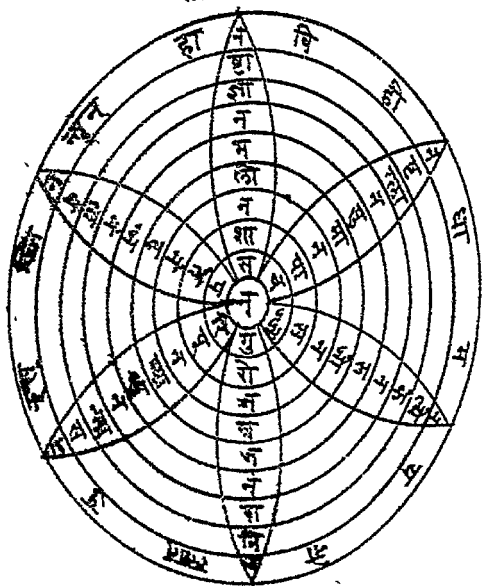
एवं ११२ श्लोकः।

कविकाव्यनामगर्भचक्रवृत्तम्

गत्वैकस्तुतमेव वासमधुना तं येच्युतं स्वीशते ।
यच्छन्त्येति सुशर्म पूर्णमधिकां शान्तिं वृजिनाध्वना॥
मत्वा त्या शमिता कृशगथमरुजं तिष्ठेज्जनः स्वालये ।
ये सद्योगकदाचलीव यजते तेभ्ये जिनाः सुश्रिये॥
॥११६॥

एवं कविकाव्य नाम गर्भ जिन ११०, ११२, ११३, ११९,

अनुलोमप्रतिलोमैकश्लोकः ।

ननशाल महाराज गीत्यानुत समाक्षर ।

रक्षमासतनुत्यागी जराहा मल शानन ॥८५॥
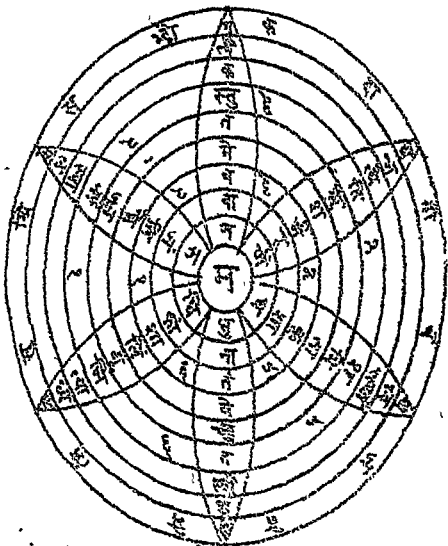
न	न	शा	ल	म	हा	रा	ज	गी	त्या	नु	त	स	मा	क्ष	र

इस पंक्ति को उलटा पढ़ने से उत्तरार्द्ध बनजाता है।

एवं ८६, ८७ श्लोकौ ।

अनुलोमप्रतिलोमश्लोकयुगलम् ।

रक्ष मासर वमेश शमी चारु रुचानुतः ।

मो ह्रिमो नशाना जोरु नद्धेन दिनाय मछ ॥८६॥

इस श्लोक को उलटा पढ़ने से नीचे लिखा

८७ वां श्लोक बनजाता है।

वक्ष राज दिनद्धेन रुजो नाशाव मो ह्रिमो ।

तनु चारु रुचा मीश शमे वारस मासर ॥८७॥